श्रीअरविन्द कर्मधारा

सितम्बर - अक्टूबर

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

(**सितम्बर - अक्टूबर** 2023)

अंक - 5

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती

ऑनलाइन पब्लिके शन

ऑफ

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

प्रार्थना और ध्यान

हे प्रभो, मुझे अपना प्रकाश दे, वर दे कि मैं कोई भूल ना करूं, वर दे कि मैं जिस अनंत आदर-सम्मान, जिस अत्यधिक भक्ति, जिस तीव्र और गभीर प्रेम के साथ तेरी ओर अभिमुख होती हूँ, वह प्रदीप्त करने वाला,विश्वासोत्पादक और संक्रामक हो और सभी के हृदयों में जागे। हे प्रभो, शाश्वत स्वामी, तू मेरा प्रकाश और मेरी शांति है, मेरे चरणों को राह दिखा, मेरी आँखें खोल,

मेरे हृदय को प्रबुद्ध कर और तेरी ओर सीधा ले जाने वाले मार्ग की ओर मुझे चला। हे प्रभो, वर दे कि तेरी इच्छा के सिवा मेरी कोई और इच्छा ना हो और मेरे सभी कर्म तेरे दिव्य विधान की अभिव्यक्ति हों।

एक महान ज्योति मुझे परिपलावित कर रही है और मैं तेरे सिवा और किसी चीज के बारे में सचेतन नहीं हूँ... ।

शांति ! शांति ! सारी भूमि पर शांति !

- श्री मां

13 दिसंबर 1913

विषय-सूची

- सम्पादकीय 5
- अनागत के पथ पर 9
- योगक्षेमं वहाम्यहम् 15
- गीता का प्रतिपाद्य विषय एवं श्रीअरविंद 18
- नव जन्म 23
- नील-पक्षी 27
- भागवत श्रम 29
- श्रीअरविंद का जन्मदिन 34
- "श्री अरविन्द मेरे गुरु हैं" 44
- एक ही समय में अनेक कार्य 45
- आश्रम गतिविधियाँ... 46

सम्पादकीय

प्रिय पाठक गण,

आज एक भावपूर्ण संस्मरण पढ़ा,जो मन को छू गया,सोचा आपसे साझा करूं....,"कल दोपहर मैं बैंक में गया था । वहाँ एक बुजुर्ग भी अपने काम से आये थे। वहाँ वे कुछ ढूंढ रहे थे। मुझे लगा शायद उन्हें पेन चाहिये। इसलिये उनसे पूछा तो, वे बोले "बीमारी के कारण मेरे हाथ कांप रहे हैं और मुझे पैसे निकालने की स्लिप भरनी है यदि आप मदद कर दें तो...।"
मैंने कहा,जरूर लाइए, मैं आपकी स्लीप भर देता हूँ।
उन्होंने मुझे धन्यवाद कहा,मैंने उनसे पूछकर स्लिप भर दी।

रकम निकाल कर उन्होंने मुझसे पैसे गिनने को कहा, मैंने पैसे भी गिन दिये। हम दोनों एक साथ ही बैंक से बाहर आये तो उन्होंने कहा, माफ करना, आपको थोड़ा कष्ट तो होगा परन्तु क्या आप मुझे रिक्शा करवा देंगे, इस भरी दोपहरी में रिक्शा मिलना बड़ा कष्टकारी होता है!
मैंने कहा, मुझे भी उसी तरफ जाना है, मैं आपको कार से घर छोड़ देता हूँ!

वह तैयार हो गये। हम उनके घर पहुँचे! '60' × 100' के प्लाट पर बना हुआ घर क्या,उसे बंगला कह सकते हैं। घर में उनकी वृद्धा पत्नी थीं। वह थोड़ी डर गईं कि इनको कुछ हो तो नहीं गया, जिससे उन्हें छोडने एक अपरिचित व्यक्ति घर तक आया है। उन्होंने पत्नी के चेहरे पर आये भावों को पढ़कर कहा कि "चिंता की कोई बात नहीं यह मुझे छोड़ने आये हैं!"

फिर बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा, इस भगवान के घर में हम दोनों पति-पत्नी ही रहते हैं। हमारे बच्चे तो विदेश में रहते हैं।"

मैंने कहा, भगवान के घर में ! तो उन्होंने बताया कि "हमारे परिवार में भगवान का घर कहने की पुरानी परंपरा है! इसके पीछे भाव है कि यह घर भगवान का है और हम उस घर में रहते हैं।जबकि अधिकतर लोग कहते हैं कि घर हमारा है और भगवान हमारे घर में रहते है।

मैंने विचार किया कि दोनों कथनों में कितना अंतर है! तदुपरांत वह बोले...

भगवान का घर बोलने से हम कोई नकारात्मक कार्य नहीं करते और हमेशा सदविचारों से ओत-प्रोत रहते हैं ।"

बाद में हँसते हुए बोले...,

"लोग मृत्यु उपरान्त भगवान के घर जाते हैं परन्तु हम तो जीते जी ही भगवान के घर का आनंद ले रहे हैं !"

यह वाक्य ही जैसे भगवान का दिया कोई प्रसाद है। भगवान ने ही मुझे उनको घर छोड़ने की प्रेरणा दी !

"घर भगवान का और हम उनके घर में रहते हैं" यह वाक्य बहुत दिनों तक मेरे दिमाग में घूमता रहा, सचमुच कितने अलग विचार थे ।

सहज ही मन में यह विचार आया कि कितना सुंदर हो, अगर हम अपने घर की बजाय भगवान के घर में रहने लगें,दोस्तों, सोचती हूं क्या सचमुच हम अपने घर में रहते हैं? अपना है क्या, अगर हम सिर्फ अपने बन जाएँ तो हमारा अस्तित्व क्या बचता है, जब तक कि हम अपने को भगवान का ना मानें श्री अरविंद आश्रम से जुड़ने के बाद और खास तौर पर जबसे श्री अरविंद आश्रम, दिल्ली शाखा के इस प्रांगण में रहते हुए कई बार मन में यह विचार आता है कि इससे ज्यादा सटीक अनुभूति और कहां हो सकती है कि हम ईश्वर के घर में रह रहे हैं। आश्रम प्रांगण में रहने का अनुभव हर क्षण यह बताता है कि यहां सब कुछ अपने पास होते हुए कुछ भी अपना नहीं है लेकिन,सब कुछ उसका है, जो शायद सबसे अधिक अपना है। अर्थात यहां से जाते समय 1 मिनट नहीं लगेगा यह सोचने के लिए कि अपना सब कुछ कहां रख कर जाएं, अपने सामानों की क्या चिंता करें, क्योंकि, सचमुच प्रयोग के लिए तो सब कुछ है, पर किसी भी चीज़ के ऊपर अपना अधिकार नहीं है। वह अधिकार, जो अहंग्रस्त होता है, तो क्या हम भी यह नहीं कह सकते कि हम भगवान के घर में रहते हैं ? उपरोक्त कहानी पढ़ते समय सचमुच यही लगा कि कितने भाग्यशाली हैं हम लोग, जिन्हें स्वयं भगवान ने बुलाकर अपने घर में रख लिया है।जिन्हें अपने निवास स्थान को भगवान का घर कहने के लिए अपने अहं से नहीं लड़ना भी नहीं पड़ता। सहज ही वह सब कुछ भगवान का है और उतना ही सच यह भी हो जाता है कि हम भी भगवान के हैं। जब अपना जीवन भगवान का और अपना घर भगवान का, तत्पश्चात हम स्वयं भगवान के हैं, तो कौन रोक सकता है हमें अपने वास्तविक स्वरूप के साथ एकाकार होने से, कौन रोक सकता है हमें अपने अंदर स्थिति स्व के संपर्क में आने से ? और जब हम उसके संपर्क में आ जाते हैं तो निश्चय ही जीवन उसके द्वारा मार्गदर्शन पाता है और हम जीवन के, बल्कि उच्च जीवन के उच्चतम लक्ष्य की ओर अपने आप ही अग्रसर होते हैं, चैत्य का संसर्ग जीवन को जिस तरह से सुचारू गति से ले जाता है उसके बाद किसी प्रकार की मानसिक जटिलता और प्राणिक अवधान उसमें बाधक नहीं हो पाते। हमारी मानसिक संरचनाओं हमारे प्राणिक संस्कार और जीवन के प्रति एक निर्धारित

अवधारणाएं अक्सर हमें जटिलता के जाल में उलझा कर रख देती हैं। जब चैत्य का साथ होता है तो जीवन इन जंजालों में नहीं फंसता, सब कुछ सहज ही सुंदर और स्वाभाविक हो जाता है । जितनी भागवत रचनाएं स्मरण होती हैं, जहां पर हृदय की सच्चाई, ईश्वर के प्रति प्रेम और भगवत कृपा का स्पर्श हो, वहां पर इन जटिलताओं का कहीं नामोनिशान तक नहीं मिलता। चेतना के उस स्तर पर, जहां पर चैत्य का सानिध्य हो, संपर्क हो और मार्गदर्शन हो, किसी प्रकार की संस्कारिक उलझने नहीं दिखाई देतीं, जैसे-

केवट ने कहा, तुम्हारे पैर की धूल से पाषाण भी रूपांतरित हो जाता है,इस लिए जब तक तुम पैर नहीं धुलवाओगे तुम्हें नाँव में नहीं बैठने दूँगा,यह बात उसने ईश्वरावतार प्रभु श्रीराम को कही , पर बेअदबी नहीं हुयी ।

शबरी, जूठे बेर खिलाती रही पर बेअदबी नहीं हुयी ।

सुग्रीव ने परीक्षा लेते हुए कहा कि पहले हड्डियों का पहाड़ हटाओ और प्रभु ने वह परीक्षा भी दी पर बेअदबी नहीं कहलायी ।

श्रीकृष्ण को ऊखल की रस्सी में बंधना पड़ा पर बेअदबी नहीं हुयी..,

..कारण और कुछ नहीं केवल सतही भौतिक मन की जटिलता या उसके सीमित दृष्टिकोण पर चैत्य का प्रभुत्व।

जिसकी दृष्टि में नृत्य में भी ईश्वर है और क्रंदन में भी । रणभूमि में भी ईश्वर है और मंदिर में भी । जिससे हमें यह क्षमता प्राप्त होती है कि सर्वांग दृष्टि उत्पन्न कर सकें और अपने ईश्वर के अवतार और अभिन्न निमित्तोपादान रूप को पहचाने ।

मन में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक ही है कि आखिर कैसे पहचानें इस चैत्य को, कैसे पाएं, इससे संपर्क कैसे होगा ? क्या होती है इसकी भूमिका, उच्चतर जीवन को पानी में । श्रीमाँ ने अपनी एक जुलाई 1970 की अनुभूति अभिव्यक्त करते हुए कहा था- ‘इस तरह की अनुभूति मुझे पहली बार हुई, शायद कल या परसों । र यहां थी, ठीक मेरे सामने घुटने टेक कर बैठी हुई थी और मैंने उसकी चैत्य सत्ता को इतनी ऊपर (करीब 8 इंच ऊपर का संकेत तक) चढ़ते हुए देखा । ऐसा पहली बार हुआ था । उसकी भौतिक सत्ता छोटी थी और उसकी चैत्य सत्ता लंबी थी । वह लिंग रहित सत्ता थी । न थी पुरुष, न हीं स्त्री । मैंने अपने आप से कहा, शायद हमेशा ही यह सत्ता ऐसी ही हो । मुझे पता नहीं लेकिन उस समय मैंने बहुत ही स्पष्ट रूप में देखा, मैंने स्वयं से कहा चैत्य सत्ता ही तो भौतिक रूप लेकर अतिमानसिक सत्ता बन जाएगी....।

वह सत्ता मानो मुझसे कह रही थी, तुम्हें अचरज हो रहा है कि अतिमानसिक सत्ता कैसी होगी । लो,

यह रही वह । यही है वह और वहां र उपस्थित थी । वह र की चैत्य सत्ता थी....., तब समझ में आता है एक दिन चैत्य सत्ता भौतिक रूप लेगी और यही क्रम विकास की निरंतरता को जारी रखेगी । श्रीमाँ कहती हैं तब मुझे छाया रहित अतिमानसिक प्रकाश की अनुभूति हुई थी जैसे कि वह मेरे अंदर प्रवेश कर रही है, तब भी र यहीं थी । र के अंदर कुछ तो है, पता नहीं क्या, लेकिन है । वह अनुभूति वहां उपस्थित थी और मुझसे कह रही थी हां तो, अंततः मैं यहां हूं, मेरी समझ में आया कि मन और प्राण को इस शरीर से हटा क्यों दिया गया और चैत्य सत्ता को बने रहने दिया गया । स्वाभाविक है कि पहले भी चैत्य सत्ता ही सभी क्रिया-कलापों पर शासन कर रही थी तो इसमें कोई नई बात नहीं थी लेकिन मुश्किलें फिर एकदम ना रहीं । प्राण और मन से आने वाली सभी जटिलताएं जो शरीर पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं, अपनी प्रवृत्तियों पर से उस पर प्रभाव डालती हैं, वे सब गायब हो गईं, अतः मैं समझ गई तो यह बात है, यह चैत्य सत्ता ही है जो आतिमानसिक सत्ता बनेगी । मां कहती हैं, मेरी आंखें खुली हुई थीं, वह लगभग भौतिक अंतर्दर्शन था ।

यथार्थ रूप से चैत्य ही है जो हमेशा बना रहता है, अगर वह भौतिक रूप धारण कर ले तो इसका अर्थ होगा मृत्यु से पिंड छुड़ा लेना उसे नष्ट कर देना । लेकिन नष्ट कर देने का अर्थ है उसे नष्ट करना जो चैत्य शक्ति के साथ मेल ना खाता हो, वह समाप्त हो जाता है । जो चैत्य के अनुरूप ना ढल सके, रूपांतरित ना हो सके, उसका हिस्सा न बन सके, वह सब नष्ट हो जाता है.....,

साथियों ! श्रीमाँ के इस अंतर्दर्शन के भावपूर्ण वर्णन के साथ ही आपके सामने श्री अरविंद कर्मधारा का यह अंक प्रस्तुत है, इस भाव के साथ कि हम सब भी चैत्य सत्ता की अनुभूति करने का प्रयास और उसके साथ निरंतर संपर्क बनाए रखना सीख सकें, उसका मार्गदर्शन पाते हुए श्रीमाँ और श्रीअरविंद के योग पथ पर चलते रहें ।

हार्दिक शुभेच्छा के साथ..,

अपर्णा

अनागत के पथ पर

छोटे नारायण शर्मा

सावित्री मृत्यु के देश से सत्यवान को लौटाकर ले आयी थी। सत्यवान को सब कुछ अनोखा, सब कुछ आश्चर्यमय लग रहा था। वे दोनों कितने बदल गये थे। जमीन आसमान सब कुछ बदला हुआ था। मृत्युन्जयी यात्रा के बाद सावित्री एक अकल्पित दिव्यता से आवेष्टित लग रही थी। लगता था स्वयं काल उसका पग भार ढोता हुआ प्रवहमान है और चराचर विश्व उसकी विराद् सत्ता की स्वल्प विभूति है। सत्यवान ने पूछा "यह सब क्या है?" सावित्री ने उत्तर दिया, "अब सभी बदल गये हैं, फिर भी सब वही है। हमने भगवान् को देखा है जीवन में उन्हीं की दिव्यता का यह शुभारंभ है। जो परात्पर हैं, पुरुषोत्तम हैं, उनके साथ हम एक हो चुके हैं और इस मृत्युच्छाया कवलित जीवन के पीछे जो उनका निगूढ़ मर्म है उसे हम जान चुके हैं।"

साधारणतः योग का अर्थ है जीवन में भगवान् को पा लेना। श्री अरविन्द के योग का अर्थ है जीवन को भगवान् में पाना उसको वहां प्रतिष्ठित करना। साधारणतः योग है भगवान् की ओर बढ़ते हुए जीव की असंग यात्रा। यह योग है जीवन की भागवत परिणति और जीवन का भगवान में उल्लसित प्रवाह।

जिस प्रकार गीता का योग भगवान् की ओर बढ़ते हुए किसी मुनीश्वर का योग नहीं; जिस प्रकार गीता की योगभूमि हिमालय का शांत एकांत गुफा या शिखर नहीं लड़ाई का मैदान है, उसी प्रकार श्रीअरविन्द की योगभूमि भी वह धर्मक्षेत्र है जो स्वयं जीवन का कुरुक्षेत्र है। पीड़ा-ग्रस्त आदमी साधक है और इसी पीड़ा में उतरे हुए भगवान् उपदेष्टा गुरु हैं। विषाद में डूबा हुआ अर्जुन गीता के योग का आदि बिन्दु है, उस योग को ग्रहण करने वाला शिष्य है, इस योग का आदि बिन्दु है वह आदमी जिसका रात्रिन्दिव चलने वाली मृत्यु का अप्रतिहत संकल्प मंत्र है "मृत्योर्मा अमृतं गमय"।

श्री अरविन्द का योग पूर्णयोग है, जीवन की समग्र सिद्धि का योग है। यह सनातन यात्रा है, विश्व यात्रा है तभी तो जब यक्ष ने युधिष्ठर से पूछा था कि रास्ता क्या है, "कः पंथा?" तो युधिष्ठर ने बिना गंतव्य पूछे ही जवाब देना शुरू कर दिया था। चराचर विश्व एक रास्ते पर चल रहा है। यह रास्ता है चेतना की यात्रा, उसकी अग्रगति, उसका उन्मिषन्त प्रवाह आदमी इस यात्रा का सचेतन राहगीर है। जीवन में जहां कहीं, जो कुछ भी ऊंचा है, जहां भी सत्संकल्प है, जहां भी ऊंचे बढ़ने का आग्रह है, वह सब इसकी उन्मिषन्त धारा में शामिल है। महाजनों येन गतः स पन्था । जीवन के व्यापक रहस्य की ओर जब हम आंख उठाकर देखते हैं तो पाते हैं कि जड़ विश्व का यह प्रसारित प्रांगण एक विशाल फलक है जिस पर महाकाल एक कहानी अंकित कर रहा है। प्रति मुहूर्त यह कहानी आगे बढ़ रही है। जड़विज्ञान में जो आज विकासवाद की चर्चा है, वह इसी कहानी के सांकेतिक ग्राफ की चर्चा है, उसका वह रेखा-चित्र है। इसमें हमें इस यात्रा की छाया तो मिलती है, इसका सम्पूर्ण रहस्य नहीं मिल पाता। निर्जीव पत्थरों के इस आंगन में पेड़-पौधे, पशु-पंछी आये, फिर आदमी भी आया। बदलते हुए रूपों की इस विशाल योजना का टेढ़ा-मेढ़ा अंकन ही हमें वैज्ञानिक विकासवाद से मिलता है। लेकिन रहस्य का असली दरवाज़ा तो बंद ही रह जाता है। इलेक्ट्रोन और प्रोटोन के भिन्न-भिन्न परिमाणों से बने ये रूप छोटे-बड़े पत्थर हो सकते थे, समानधर्मी पदार्थों का ढेर मात्र हो सकते थे, लेकिन इलेक्ट्रोन और प्रोटोन से बना एक संघात शिला और दूसरा हाथी कैसे बन जाता ? बात बनायी जा सकती है, लेकिन जवाब नहीं दिया जा सकता। जवाब लेबोरेटरी में है नहीं। अणुवीक्षण यंत्र इस रहस्य को नहीं पढ़ सकते; वे इसके परिणाम को ही देख सकते हैं। सचमुच इसे देखने के लिये एक दूसरी दृष्टि चाहिये जिसके आगे विश्व किसी जड़शक्ति के द्वारा अंकित घुणाक्षर नहीं, सचेतन महाशक्ति की क्रिया है।

यह महाशक्ति स्वयं देवता की महाशक्ति है जो अपने गुणों में डूबी हुई है। यंत्रों के सहारे नहीं, चेतना में डूबकर, तादात्म्य ज्ञान के द्वारा ही इसे देखा जा सकता है। "ते ध्यानयोगानगतानुपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।" जड़तत्त्व इसी देव शक्ति का निस्पंद आत्मगोपन है। अचर जड़ता में इसीलिये प्राण का सूर्योदय हो जाता है। फिर 'मन' आकर इससे जुड़ जाता है और उसके भिन्न-भिन्न शिखर खुलने लगते हैं। जो एक दिन मात्र अमीबा (Amoeba) था. दूसरे दिन आइंस्टाइन बन जाता है।

श्रीअरविन्द का योग इसी शक्ति के स्वप्नाचार का जाग्रत् विधान है। जो अब तक अचेतना में दबा हुआ था, अर्धचेतना में जिसकी मात्र छाया गोचर थी, श्रीअरविन्द का योग उसी रहस्य का विवरण और विस्तार है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र को, अर्जुन के विषाद और संकट को गीता के योग से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इस युग को भी हम श्री अरविन्द के योग से अलग नहीं कर सकते।

साधारण बुद्धि से भी यह समझा जा सकता है कि आज का युग एक विशेष युग है। दो-दो विश्व युद्ध लड़े जा चुके हैं; आदमी चांद की यात्रा से लौट आया है। विज्ञान की जययात्रा अब चाँद से भी ऊपर अंतरिक्ष में बढ़ने लगी है। लेकिन आदमी की इस सारी जयगाथा के ऊपर फैली हुई है मृत्यु की सघन छाया । वह आणविक विस्फोटों के आतंक से आतंकित है। श्रीअरविन्द का योग इसी पीड़ा में पड़े हुए आदमी के लिये मुक्ति का वह मंत्र है जो जीवन की सर्वोच्च सिद्धि और परितर्पण का भी महामंत्र है। आज का विश्व सकट, आदमी के ऊपर फैली हुई विषाद की छाया, उसके हृदय में बजने वाला हाहाकार उसकी उलझन और उसकी पीड़ा, विषाद में पड़े अर्जुन की ही पीड़ा का विश्व संस्करण है। अर्जुन को जो फार्मूला दिया गया, वह था "योगस्थः कुरु कर्माणि "- योगस्थ होकर काम करो। इसी फार्मूले का अधुनातन विश्वजनीन स्वरूप है श्री अरविन्द का योग। श्रीअरविन्द ने कभी कहा था, योग उसे देना होगा जो साधारण से साधारण आदमी है, जो सर्वहारा है। क्योंकि यह विश्वमंत्र केवल गिने चुने आदमियों की कल्याण साधना का उपाय नहीं, स्वयं जीवन के रूपांतरण का योग है और यह रूपांतरण प्रकृति के मूलतत्व का रूपांतरण है। आदमी जो मर्त्यसुखों का प्याला मात्र है, अगर उसको अमृतत्व के सुधापात्र में रूपांतरित होना है तो उसके देहतत्त्व को भी बदलना होगा।

आज जो जगत हम देख रहे हैं, वह विश्व सृष्टि का वह स्वरूप है। जिसका शीर्षस्थ जीव है आदमी जिसका सर्वोच्च शिखर मनोमय चेतना का ही उद्घाटित शिखर है। चेतना के इसी शिखर से प्रवाहित होने वाली धाराओं से सिंचित हैं उसके सारे प्रयत्न उसकी सभ्यता-संस्कृतियां, उसके इतिहास-पुराण, उसके दर्शन शास्त्र और विज्ञान, उसके धर्म और उसकी आध्यात्मिकता। उसके शक्तिपुंज का, उसके ऊंचे-से-ऊंचे आदमी बनने का यही राज है। परन्तु ऊंचा से ऊंचा आदमी भी आदमी है। केवल ऊंचा रूप ही रूपांतरण नहीं। आदमी बदले इसके लिये चेतना को बदलना होगा। देव पुरुष का प्राकट्य दिव्य चेतना से ही संभव है। श्रीअरविन्द की तपस्या विश्व विधान में इसी दिव्य चेतना के अवतरण और प्राकट्य की तपस्या है। उनकी यही तपस्या विश्व परिणाम की आधारभूत तपस्या है, नये भविष्य का सूर्योदय है।

भारत में 'आध्यात्मिक' परंपरा और साधना की एक ऊंची मान्यता है अवतार तत्त्व का प्रतिपादन और उस पर बढ़ता हुआ विश्वास । विश्व की भिन्न-भिन्न जातियों में इसका न्यूनाधिक विकसित स्वरूप मिलता है । ईसामसीह भगवान् के पुत्र हैं, मुहम्मद मसीहा वा पैगम्बर हैं जो भगवान् का सन्देश, भगवान् की कृपा पृथ्वी पर उतार लाते हैं। भारत में प्रचलित दशावतार की कथा तो काल क्रम में होने वाली विश्वविवृत्ति की ही कथा है। इस योग के संदर्भ में इसका अपना महत्त्व है।

हमने देखा है विश्व विकास की धारा जड़-पाषाण से चलती, पेड़-पौधों, लता वितान से रेंगने उड़ने वाले जीवों से, दौड़-भाग करने वाले वन-पशुओं से होती हुई जीव- विसृष्टि की विपुल श्रृंखला पार करती

हुई मननशील प्राणी मनुष्य तक आयी है। यह यात्रा जड़ पिण्ड से प्राण और प्राण से मनोभूमि तक की यात्रा है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन के चतुष्कोण से घिरा पशु भाव, आदमी में अधिक आत्मचेतन भाव में उन्नीत हो चुका है। आदमी अपने को जानता समझता है, वह विश्व विधान को जानने समझने की पिपासा रखता है। साथ ही अपने आपसे वह सर्वाधिक असंतुष्ट प्राणी है। पशु अपनी प्राणिक तुष्टियों से ही तृप्त हो जाते हैं, लेकिन आदमी को चाहिये वह सब जो उसके पास नहीं, जो वह स्वयं नहीं। वह अपने जीवन का मात्र विस्तार ही नहीं उसका अन्यथाकरण भी चाहता है। मृत्यु से कवलित वह अमृत की कामना करता है, मिथ्यात्व और प्रपंच का निवासी वह सत्य का अन्वेषक है; अंधकार में डूबा हुआ वह ज्योति का उपासक और अभीप्सु है।

पत्थर से आदमी तक की यह राह लम्बी राह है और इसके विविध सोपान अथवा मानदंड हैं वे अवतार जो चेतना के विविध पक्षों को पार्थिव रंगमंच पर उद्घाटित और स्थिर करते हैं। हमें जो जगत दिखलाई पड़ता है उसके दो आयाम स्थिर रूप से जो गोचर हैं वे हैं व्यक्ति और विश्व। व्यक्ति का अपना संकल्प है, साथ-ही-साथ वह विश्व विधान से बंधा हुआ है। विश्व संकल्प से वह बाहर नहीं जा सकता। परन्तु इन दो आयामों का जो अधिशासी आयाम है, वह व्यक्ति और विश्व दोनों से अतीत है, विश्वातीत परात्पर है। उसी विश्वातीत परात्पर की क्रिया को वहन कर ले आते है अवतार। वे संभावित और अपेक्षित विकास के नये आयाम को उद्घाटित कर देते हैं। दिव्य महाशक्ति की इसी क्रिया से संचालित होता रहता है युगपरिवर्तन का विश्वचक्र। काल की मंथर क्रिया- धारा में, उसके सामान्य गतिच्छंद में तब एक नया वेग जुड़ जाता है। यही है देव मुहूर्त श्रीअरविन्द के शब्दों में 'The Hour of God'। भगवान् का प्रश्वास तब सर्वत्र छा जाता है और विश्व में प्रकट होता है वह सब जो विश्व विधान से अतीत है, जो अवतार की प्रकट क्रिया है।

आज हम जिस घड़ी में जी रहे हैं वह एक ऐसा ही मुहूर्त है। विज्ञान का अतिशय उन्मेष जीवन का आश्चर्यजनक परिवर्तन मानव चेतना का हतबुद्धिकर अंतर्विरोध, आदमी की जययात्रा और साथ ही उसका किंकर्तव्यविमूढ़ भाव सब मिलाकर इस युग के उस जटिल रूप को उजागर करते हैं जहां देव दानव का निर्णयात्मक मल्लयुद्ध है, जहा सर्वनाश और परितर्पण की विपरीत संभावनाएं युगपद गोचर हैं। चुनाव आदमी को करना है। असत्य के साथ वह पाताल प्रवेश करेगा न कि उसे लांघेगा, वह लांघ जायेगा जीवन विधान की यह विकृति, संसिद्ध करेगा अपनी सर्वोच्च नियति, अपना देव रूपायण।

श्री अरविन्द का योग चेतना की यही जययात्रा है। यह भगवान् का आदिष्ट संदेश है, उनका प्रकट मंत्र। श्रीअरविन्द के बारे में श्रीमाँ ने कहा है, "पृथ्वी के इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज का नेतृत्व करते हैं, जिसके वे प्रतिनिधि है वह न तो कोई शिक्षा है, न अंतराभास से भरा हुआ कोई तत्व बोधः वह है स्वयं

परात्पर से आयी हुई एक निर्णायक सीधी क्रिया।”

इस निर्णायक क्रिया का अर्थ और परिणाम है जीवन का सर्वथा नवीन विन्यास, रूपांतरण अथवा आमूलचूल परिवर्तन। हमने देखा है कि प्रकाश, सत्य अथवा अमृतत्त्व की भूख मानव चेतना की भूख प्यास है। जब से आदमी ने होश सँभाला है जब से वह जीवन के दुःख दर्द के प्रति सचेत हुआ है, उसने चाहा है कि वह इससे छुटकारा पाये इससे निकल भागे। उसे यह भी भान होता रहा है कि विश्व एक विराट् व्यवस्था है और सूरज चाँद, हवा- अग्नि, पहाड़- समुद्र, बदलती ऋतुएं सूर्यास्त सूर्योदय से लेकर जीवन का पतन अभ्युदय एक ऐसा खेल है जिसके पीछे एक महान् शक्ति की नियंत्रणकारी उपस्थिति है उसी के सहारे यह नाश निर्माण का इतना बड़ा खेल, सृष्टि चक्र का इतना जटिल विधान अकल्पनीय निश्चितता के साथ घूमा करता है। आदमी जनमता है, बड़ा होता है, मर जाता है- उपनिषद की भाषा में हरे शस्य के समान उत्पन्न होता और सूखता रहता है। उसे सुख होता है, दुख होता है; मिलन विग्रह की अनुभूति होती है; आशा-निराशा का प्रवर्तित चक्र उसको उल्लास-विषाद से बांधे रखता है; क्या कोई ऐसा उपाय वह ढूंढ निकाल सकता है जिससे वह जीवन से दुख की छाया को मिटा दे, रोग-दुख और पीड़ाओं को सर्वदा के लिये निराकृत कर दे? क्या संभव है जीवन का एक वैसा मंगलमय विधान जिस पर अमंगल की छाया न हो? तपस्वियों ने तपस्या की; ऋषियों ने ध्यान लगाये और भिन्न-भिन्न रास्तों से वे वहां गये जहां विरोधाभासों का आपातदृष्ट एक विराट् शक्ति का वर्णैश्वर्य है जिसके रूप रंगों की विपुल छटा मानव चेतना में ऐसा रूप ग्रहण कर रही है और यह भयंकरता भी अंधी या अर्थहीन भयंकरता नहीं है, इसका अपना वैश्व प्रयोजन है। यह भयंकरता न होती तो बुद्ध और ईसामसीह पैदा नहीं होते, उपनिषद और वेदों की रचना न होती जीवन विपुल स्वार्थी का तरंग क्षुब्ध सागर हो जाता परन्तु करुणा से भरी गंगा की धारा यहां से सर्वथा निश्चिह्न हो जाती। जीवन की यह भयंकरता ही है महाकाल के हाथ का वह दंड जो आदमी को इस भूमि में टिकने नहीं देता। उसे सर्वदा आगे बढ़ने को बाध्य किया करता है। काल के पथ पर विश्व की यह अवारित अग्रगति ही वह विश्वयात्रा है जो मरे अतीत को नित्य नवीन रूपों में प्रकट करती और वर्तमान को भविष्य की नयी सिद्धियों के प्रति उन्मुख रखती है। हम अतीत में जो थे उसी में छिपा हुआ था हमारे वर्तमान का बीज और अतीत में जो हम थे अथवा वर्तमान में जो हैं, उसी का रूपांतरित वीर्य अथवा अन्यथाकृत स्वरूप है हमारा आने वाला भविष्य। हमारी जागृति सोने की तैयारी नहीं है, हमारी सुषुप्ति है नये जागरण की भूमिका ।

हम अंधकार को देखते हैं; सूरज को भी देखते हैं। लेकिन अंधकार तो महत सूरज की अनुपस्थिति है, उसके आत्मगोपन का परिणाम। परन्तु सूर्य को हम अंधकार की मात्र अनुपस्थिति नहीं कह सकते। उसका प्रकाशमय स्वरूप स्वयंभू और निरपेक्ष सत्य है। उसी तरह जीवनगत अधकार भी विश्व को प्रकट करने वाली देवात्मशक्ति के अप्रकट आनंद का विवरण है। मानव अर्द्धस्फुट चेतना में आनंद का यह अप्रकट भाव जितना उग्र उत्पीड़न का भाव बन जाता है, उतनी तीव्र होती है उसकी आगे बढ़ने की प्रेरणा आदमी का संकट, उसकी पीड़ा और उसका अर्ध चैतन्य चेतना के उस सनातन भाव को प्राप्त कर लेने की

तैयारी है, उस उपलब्धि का आवश्यक पूर्व पक्ष है जिसको पा लेना ही सच्चा पुरुषार्थ है, सच्ची जीवन सिद्धि है। मनोमय चेतना का यह दुःस्वप्न ही है उसकी अतिमानसी चेतना में उन्नयन और जाग्रति की तैयारी।

यही सिद्धि है मानवजाति की सर्वोच्च नियति उसका नया रूपायण। फल फूल से पैदा होता है लेकिन फल फूल ही नहीं है। आने वाला देव पुरुष भी आदमी से प्रकट होगा, लेकिन वह आदमी नहीं होगा। क्योंकि आदमी भी जिस प्राणी से प्रकट हुआ, वह आदमी नहीं था। आदमी की संभावना उसमें अवश्य थी, लेकिन यही संभावना जीव विसृष्टि की चरम संभावना नहीं। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, 'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् "हे अर्जुन मुझे तू सारी भूत सृष्टि का सनातन बीज समझ।" फिर जिसका सनातन बीज श्रीकृष्ण हैं. स्वयं भगवान् हैं तो उसका शेष परिणाम, उसका अंतिम फल अर्धचेतन, अपूर्ण मानव कैसे हो सकता है? वस्तुतः विश्वस्य बीज अगर वैष्णवी शक्ति है तो उसका अंतिम परिणाम भी चिन्मय देवपुरुष ही होगा, अचेतन अथवा अर्द्धचेतन मानव नहीं।

फिर अगर चिन्मय पुरुष का प्राकट्य दिव्य चेतना सम्पन्न जीवन का विकास ही सृष्टिक्रम का नया पादक्षेप है. वर्तमान का रूपांतरित दूसरा भविष्य है तो श्रीअरविन्द का योग है इस विश्वक्रिया की मूलभूत धारा। श्रीअरविन्द इसी भविष्य सिद्धि के अवतार और उद्योक्ता हैं।

(क्रमशः – अगले अंक में)

जब तक तुम कड़ी मेहनत नहीं करते तब तक तुम्हें शक्ति नहीं मिलती, क्योंकि तब तुम्हें उसकी जरूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। शक्ति तुम्हें तभी मिलती है, जब तुम उसका उपयोग करते हो।

-श्रीमाँ

योगक्षेमं वहाम्यहम्

जय प्रकाश सिंह

श्रीमद्भगवद्गीता उपनिशद् रूपी उपवन से चुने हुए सुन्दर पुश्पों का गुच्छा है। यह षास्त्र हमें समझ में आ जाये तो जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति यथार्थतः सम्भव हो जाती है वषर्ते हम इसे गहन अध्ययन करते हुए एवं एक जिज्ञासु के रूप में समझते हुए जीवन में उतारते रहें। इसमें ''कत्र्तव्य कर्म को किस तरह से सम्पादित किया जाय'' इसे समझाते हुए भगवान कृश्ण ने अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उपदेष दिया है।

'योगक्षेमं वहाम्यहम्' अध्याय 9 के 22वें ष्लोक का आखिरी हिस्सा है। इसे भौतिक जगत में जीवन बीमा निगम वाले अपनी एक थीम के रूप में प्रयोग करते हैं। यह श्रीमद्भगवद्गीता का 360वां ष्लोक है। कुछ लोग इसे गीता का लगभग मध्यविन्दु भी मानते हैं। लेकिन यह यथार्थ नही है। यह ष्लोक उस रहस्य को उद्घाटित करता है जिसे समझकर आध्यात्मिक एवं भौतिक क्षेत्र में महान सफलता प्राप्त की जा सकती है। ष्लोक इस प्रकार हैः-

अनन्याष्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेशां नित्याभियुक्तनां योगक्षेमं वहाम्यमहम्॥

''जो भक्त अनन्यभाव से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी ही उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त पुरूशों का योगक्षेम मैं वहन करता हूँ''

जो लोग यह जानकर कि एक मात्र आत्मा ही सम्पूर्ण विष्व का अधिश्ठान है एवं पारिमार्थिक सत्य है, अनन्य भाव से मेरा अर्थात् परमात्मा का ध्यान करतें हैं उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ। यहाँ योग एवं क्षेम आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों भावों में लिया जाता है। योग का अर्थ है अधिक से अधिक आध्यात्मिक षक्ति और क्षेम का अर्थ है अध्यात्म का परम लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति, जो यज्ञ का फल है। यज्ञ भावना से कर्म करते हुए हमारी तीव्रता से भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक उन्नति होती है। यज्ञ भावना से तात्पर्य होता है- निस्वार्थ भाव से कत्र्तव्य करते हुए ईष्वरार्पण भाव से लोक संग्रह हेतु कर्म करना। लोक संग्रह का तात्पर्य है उन्मार्ग से सन्मार्ग की तरफ मोड़ना। यदि हम यज्ञ भाव से कर्म करते हैं तो हर समय परमात्मा को स्मरण करने का अभ्यास दृढ़ प्रतिश्ठित होता जाता है जो समर्पण के लिए आवष्यक होता है। समर्पण से हम आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं।

यदि इसे व्यावहारिक जगत के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में उपयोग में लाये तो हमें अपने लक्ष्य के प्रति संकल्पित होना पड़ेगा। परन्तु यदि हम षुरू में संकल्प करते भी है तो कार्य के दौरान हममें विक्षेप भी आते है इससे हमारी ऊर्जा उस विषेश कर्म में एकाग्र नहीं हो पाती जिससे कर्म की गुणवत्ता प्रभावित होती है अर्थात इस संकल्प में अनन्यता बनी नहीं रह पाती। इसलिए इस ष्लोक के द्वारा यह भी समझाने का प्रयास किया गया है कि हम अपने कार्य को एकाग्र भाव से बिना विक्षेप के सम्पादित करें तो सफलता निष्चित होती है। एकाग्रता के अभाव में कार्यक्षेत्र में उन्नति सम्भव नहीं है।

हमारे जीवन की यह एक त्रासदी है कि हम इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि विचारों से ही निमार्ण कार्य होता है। संकल्प षक्ति से ही कर्म बल प्राप्त होता है। सफलता के लिए आवष्यक है कि मनुश्य एकाग्रता से निष्चित किए हुए अपने जीवन के लक्ष्य के विशय में सतत स्फूर्ति, उत्साह और सामथ्र्य के साथ चिन्तन करें।

केवल विचार करना ही अपनें में पर्याप्त नहीं है। सफल कर्म के लिए हर सम्भव प्रयत्न की सतत आवष्यकता होती है। यहाँ पर उपासना का अर्थ है पूजा। यहाँ उपासते क्रिया पद को परि उपसर्ग लगाया गया है जिसका आषय है सम्पूर्ण प्रयत्न। पूजा के द्वारा हम देवता का आह्वान करते हैं- देवता का तात्पर्य है'' किसी भी क्षेत्र की फल प्रदायक क्षमता''। अपने चुने हुए कार्य में संकल्प का सातत्य एवं उसके लिए सर्वस्व अर्पण करना एवं नित्ययुक्तता अर्थात संयम। जीवन में गौरवमयी सफलता के लिए आत्म संयम आवष्यक है।

जब जीवन में किसी महत्वाकांक्षा को लेकर मनुश्य अपने मार्ग में अग्रसर होता है तो कठिनाइयां आती हैं। उस मार्ग में बहुत सी आकर्शक एवं प्रलोभन देने वाली परिस्थितियां भी कठिनाइयों के रूप में आती है जिससे एकाग्रता भंग होती है अतः अनन्य भाव उस कर्म के लिए बना ही रहना चाहिए।

श्री शंकराचार्य के अनुसार अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना योग है एवं प्राप्त वस्तु का रक्षण क्षेम कहलाता है। इस विवेचना में यह भाव भी प्रयोज्य है। जीवन में आने वाले संघर्श प्रायः दो श्रेणियों में रखे जा सकते है प्रथम वस्तु को प्राप्त करने के लिए संघर्श एवं प्राप्त वस्तु के रक्षण के लिए संघर्श। इन दोनों स्थितियों में तनाव आना स्वाभाविक है अतः जब हमारा आश्रय परमात्मा में सतत दृढ़ होता जाता है तो तनाव भी दूर होता जाता है। इस स्पश्टीकरण को हम एक षाष्वत भाव में ले सकते हैं क्योंकि जब हमारा समर्पण नित्ययुक्तता के रूप में हो जाता है तो हमारा आत्म संयम भी दृढ़ हो जाता है। यह आत्म संयम भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन के लिए आवष्यक है।

इस प्रकार जो कोई पुरूश अपने कार्य क्षेत्र में वर्णित षारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर पालन करने योग्य नियमों के अनुसार कार्य करेगा तो सफलता उसका वरण करेगी।

थोड़ा गम्भीर भाव को ग्रहण करें तो श्री अनन्यता के अनुसार केवल मात्र भगवान को देखना, प्रतिक्षण उनके साथ युक्त रहना, समस्त जीवों में उससे प्रेम करना और सब पदार्थों में उसका ही आनन्द लेना यह भक्त के आध्यात्मिक जीवन की सम्पूर्ण अवस्था है। चूंकि वह सर्वत्र भगवान को देखता है, इस कारण उसका वह दर्षन उसे व्यावहारिक जीवन से विलग नहीं करता और न जीवन की पूर्णता का कोई अंष उससे छूटता है। कारण तब स्वयं भगवान ही उसे प्रत्येक हितकारी वस्तु प्राप्त कराते है एवं उसका रक्षण करते है।

गीता का प्रतिपाद्य विषय एवं श्रीअरविन्द

महाभारत भगवान श्री वेदव्यास द्वारा रचित संस्कृत का महाकाव्य है। इसमें 18 पर्व हैं। जिनमें एक है 'भीष्म पर्व'। गीता या श्रीमदगीता इसी पर्व का अंग है। गीता की अनगिनत टिकाएँ हैं। टीकाकारों, कथावाचकों, प्रवचन कर्ताओं, व्याख्यान कर्ताओं, साहित्यिकारों, गृहस्थों ने केवल इनके श्लोकों के ही नहीं बल्कि शब्दों के भी अलग-अलग अनेक अर्थ निकाले हैं। अर्थ ही नहीं गीता के प्रतिपाद्य विषय को लेकर भी मतभेद हैं। विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे देखा है और जैसा समझा है और वैसे ही लिखा है। अनेक टीकाकारों का मत है कि गीता का प्रारंभ मुख्य तौर पर २य अध्याय के ११वें श्लोक से हुआ है। इसी कारण उनका मानना है कि द्वितीय अध्याय में ही गीता के प्रतिपाद्य विषय की खोज करना उचित है। गीता के अब तक जितने टीकाकार हुए हैं सबने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसके प्रतिपाद्य विषय का विवेचन किया है। संक्षेप में गीता के प्राचीन तथा अर्वाचीन कुछ टीकाकारों की सम्मति दे रहे हैं।

गीता के प्राचीन टीकाकार में प्रमुख हैं अद्वैतवादी शंकराचार्य और विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्य।

(क) शंकराचार्य (७८८-८२० ईस्वी) का 'ज्ञान-योग - भारतीय साहित्य में मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन गिनाये गये हैं - ज्ञान, कर्म, उपासना। ज्ञान का संबंध मस्तिष्क से है, कर्म का संबंध इन्द्रियों से है, उपासना का संबंध हृदय से है। इसी को अंग्रेजी में Knowing, Willing, Feeling कहते हैं। ज्ञान के मार्ग को ज्ञानयोग, कर्म के मार्ग को कर्म-योग तथा उपासना के मार्ग को भक्ति-योग कहा जाता है। शंकराचार्य अद्वैतवादी थे। उनका कहना था कि जगत् मिथ्या है, ब्रह्म ही सत् है, आत्मा भी मूलतः ब्रह्म है, यह जो नानात्व दिखाई देता है उसका कारण अज्ञान है। अगर यह बात ठीक है कि अज्ञान ही सब रोगों की जड़ है तो हमारे सब रोगों को काटने का उपाय भी 'ज्ञान' के सिवाय दूसरा हो नहीं सकता। यही कारण है कि

शंकराचार्य के कथनानुसार गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'ज्ञान-योग' है।
(ख) रामानुजाचार्य (जन्म १०७३ या ११वीं शताब्दी) का 'भक्ति- योग' -- शंकराचार्य अद्वैतवादी थे, तो रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतवादी थे । इनका कहना था कि शंकराचार्य का अद्वैतवाद असत्य है । ईश्वर, जीव तथा जगत्--ये तीनों एक तत्व नहीं, भिन्न-भिन्न तीन तत्व हैं जीव (चित्) तथा जगत् (अचित्) -- दोनों एक ही ईश्वर के सूक्ष्म शरीर हैं। क्योंकि इस सिद्धान्त में जीव तथा जगत् को ईश्वर का ही शरीर माना जाता है, इसलिए इस सिद्धान्त को भी 'अद्वैत' ही कहते हैं, परन्तु क्योंकि इस सिद्धान्त में ईश्वर के शरीर को जीव तथा जगत् से विशिष्ट, अर्थात् सहित माना जाता है इसलिए इसे 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं।

गीता के अर्वाचीन टीकाकारों में प्रमुख हैं लोकमान्य तिलक और श्रीअरविंद।
(क) लोकमान्य तिलक (१८५६-१६२० ईस्वी) का 'कर्म-योग' - गीता के अर्वाचीन टीकाकारों में लोकमान्य तिलक का नाम प्रमुख है। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह घोषित किया कि गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'ज्ञान' नहीं है, 'भक्ति' नहीं है, अपितु 'कर्म' है। लोकमान्य तिलक ने लिखा है कि किसी ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय को देखने के लिए उसका आदि देखना चाहिए, अन्त देखना चाहिए, यह देखना चाहिए कि पुस्तक के बीच में बार-बार किस बात को दोहराया गया है। जो बात शुरू में कही गई हो, जो बात बीच-बीच में दोहराई गई हो, जो अन्त में कही गई हो, वही उस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय हो सकता है। इसी को मीमांसक कहते हैं—'उपक्रमोपसंहारों प्रन्यासोऽपूर्वता फलम्'- उपक्रम में, उपसंहार में, अभ्यास अर्थात् बार-बार दोहराने में जो बात कही जाय – 'लिगं तात्पर्य-निर्णये''— ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णय करने में उसी बात को प्रधानता दी जानी चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रश्न होता है कि गीता का प्रारंभ कैसे हुआ, बीच में क्या बात कही गई, अन्त कैसे हुआ? जो अर्जुन कर्म छोड़ चुका था वह कर्म में प्रवृत्त हुआ। लोकमान्य तिलक का कहना है कि गीता का आदि, मध्य, अंत इस बात के साक्षी हैं कि गीता का प्रतिपाद्य विषय 'कर्म-योग' है।

(ख) श्री अरविन्द घोष (१८७२-१९५०) का 'दिव्य-कर्म' - भाष्यकार विद्यामार्तण्ड डॉ.सत्यव्रत सिद्धांतालंकार ने श्री अरविंद के दृष्टिकोण की बड़ी विस्तृत व्याख्या की है। वे कहते हैं - श्री अरविन्द ने गीता पर 'Essays on the Gita' लिखा है। श्री अरविंद का कहना है कि गीता का प्रतिपाद्य विषय 'कर्म-योग' नहीं है। जो लोग गीता का प्रतिपाद्य विषय 'कर्म-योग' कहते हैं, वे ऐसा पाश्चात्य प्रभाव के कारण कहते हैं। पाश्चात्य विचार के अनुसार समाज-सेवा, देश-सेवा, लोक सेवा आदि हमारा कर्तव्य है, यही विचार लेकर बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा लोकमान्य तिलक ने गीता की कर्म-परक व्याख्या की है, वस्तुतः गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्म नहीं है।

वे कहते हैं कि मनुष्य को अपना 'कर्म' कर्तव्य समझकर करना चाहिए। सिपाही का यह कर्तव्य है कि वह लड़े, हुकुम पाते ही गोली मार दे चाहे उसके सामनेवाला उसका बुजुर्ग हो, गुरु हो, रिश्तेदार हो; जज का कर्तव्य है कि वह अपराधी को जेल भेज दे, खूनी को फांसी की सजा दे; वकील का कर्तव्य है कि अपने मवक्किल की पैरवी करने में पूरी कोशिश करे चाहे वह जानता हो कि उसका मवक्किल कसूरवार है। कहा जाता है कि यह 'कर्म-योग' है, परन्तु यदि मनुष्य की आन्तरिक दृष्टि बदल जाय, सिपाही का हृदय टालस्टाय जैसा हो जाय और वह समझने लगे कि किसी भी मनुष्य की जान लेना वैसा ही घृणित काम है जैसा किसी मनुष्य का माँस खाना, यदि जज का यह आन्तरिक विश्वास हो जाय कि किसी मनुष्य को फांसी देना मानवता की दृष्टि से पाप है, यदि वकील की आँख खुल जाय और वह यह देखने लगे कि झूठ सदा पाप ही है, तब क्या होगा? क्या तब भी 'कर्म-योग' की दुहाई देकर सिपाही को लड़ना ही पड़ेगा, जज को अपना आन्तरिक विश्वास दबाना ही पड़ेगा, वकील को झूठे मवक्किल की पैरवी करनी ही होगी ? ऐसा 'कर्म-योग' किस काम का जो अन्तरात्मा को दबाये, और क्या इस प्रकार के 'कर्म-योग' की गीता में हिमायत होगी - यह संभव नहीं है। बुद्ध ने राज छोड़ दिया, रामकृष्ण परमहंस ने घर-बार छोड़ दिया, विवेकानन्द ने भी सब कुछ छोड़ दिया। क्या गीता बुद्ध को यह उपदेश देगी कि राज कर, स्त्री-पुत्र का पालन करना उसका कर्तव्य था, इन्हें छोड़ कर उसने अच्छा नहीं किया; क्या गीता परमहंस रामकृष्ण तथा विवेकानन्द को यह उपदेश देगी कि घर-गृहस्थी को छोड़कर जो उन्होंने अपने को भगवान् के अर्पण कर दिया -- यह ठीक नहीं किया। जब किसी के अन्तरात्मा में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो जाय जैसी बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द के हृदय में उत्पन्न हो गई, तब सभी कर्तव्यों को त्याग देना, कुचल डालना और एक ओर फेंक देना पड़ता है। अर्जुन के सम्मुख भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई थी। वह सिपाही था, इसलिए उसे युद्ध करने के लिए कहा जा रहा था। उसे कहा जा रहा था कि युद्ध करना उसका धर्म है । सामने कोई भी हो, गुरु हो, भाई हो, रिश्तेदार हो- सिपाही का काम युद्ध में शस्त्र हाथ से फेंक देना नहीं। परन्तु क्या यह बात जँचती है कि अर्जुन की अन्तरात्मा उसे युद्ध से विरत कर रही हो, और श्रीकृष्ण उसे कह रहे हों कि तुम्हें युद्ध करना ही होगा क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य है। अर्जुन की तो कठिनाई ही यह थी कि भले ही युद्ध करना उसका कर्तव्य था किन्तु उसकी अन्तरात्मा की पुकार उसे युद्ध से विरत कर रही थी, ठीक ऐसे जैसे आँख खुल जाने पर वकील अपने झूठे मवक्किल की पैरवी करना छोड़ देता है, जैसे बुद्ध ने ज्ञान की आँख खुलने पर राज-पाट छोड़ दिया, परमहंस रामकृष्ण और विवेकानन्द ने घर-बार छोड़ दिया। अर्जुन को यह कहना कि तुम सैनिक हो, सैनिक का काम करो, काटो-मारो, चाहे पाप हो, चाहे पुण्य, चाहे इसका जो भी फल हो उसका विचार न करके निष्काम- भाव से अपना कर्म करो - श्री अरविंद का कहना है कि ऐसी सीख किसी राज्य की ओर से हो सकती है, राजनीतिज्ञ ऐसा कह सकते हैं, परन्तु कोई महान धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ, जिसका कि उद्देश्य ही जीवन और कर्म के प्रश्न को जड़मूल से हल करना हो, ऐसी शिक्षा नहीं दे सकता। यदि इस प्रकार के नैतिक प्रश्न के विषय में गीता को यही बात कहनी हो तो इसे संसार के महान् ग्रन्थों की सूची से अलग ही

करना होगा और फिर यदि इसे कहीं रखना ही हो तो राजनीतिशास्त्र की किसी लाइब्रेरी में रख देना होगा।

अगर 'कर्म-योग' गीता का प्रतिपाद्य विषय नहीं है, तो श्री अरविंद के विचार में गीता का प्रतिपाद्य विषय क्या है? श्री अरविंद का कहना है कि गीता राजनीतिशास्त्र का ग्रन्थ नहीं, बल्कि आध्यात्मिक जीवन का ग्रन्थ है। श्री अरविंद के अनुसार गीता जिस कर्म का प्रतिपादन करती है वह 'मानव-कर्म' (Human action) नहीं, अपितु 'दिव्य-कर्म' (Divine action) है। 'मानव-कर्म' क्या है, और 'दिव्य-कर्म' क्या है?

जिन्हें हम कर्तव्य कर्म कहते हैं वे सब 'मानव-धर्म' हैं। समाज ने जिन कर्तव्यों को हमारे लिए निश्चित किया है, वे 'दिव्य-धर्म' नहीं, 'मानव-धर्म' हैं। ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण का कर्म, क्षत्रिय के लिए क्षात्र-कर्म, ये सब 'दिव्य-धर्म' नहीं कहे जा सकते, ये सब 'मानव धर्म' हैं। सिपाही युद्ध में जिसे सामने आते देखे उसी पर गोली दाग दे, वकील अपने सच्चे-झूठे मवक्किल को जी-जान से पैरवी करे, जज हर अपराधी को जेल भेज दे ये सब 'मानव-धर्म' हैं, 'दिव्य-धर्म' नहीं। 'मानव-धर्म' का अर्थ है- 'सामाजिक धर्म' समाज ने अपनी आवश्यकताओं के लिए जो उचित समझा वह मनुष्य का कर्तव्य निश्चित कर दिया। समाज की जावश्यकता बदल जाय तो यह धर्म, यह कर्म भी बदल जाय। जो कर्म मानव समाज की आवश्यकता के अनुसार बदल सकता है, आज वह कर्तव्य-कर्म है, आवश्यकता बदल जाने पर कल वह अकर्तव्य-कर्म हो सकता है, ऐसे कर्म के लिए गीता जैसा महान् ग्रन्थ क्या यह उपदेश दे सकता है कि उसे आंख मींच कर करते जाओ, चाहे वह पुण्य का कर्म हो, चाहे पाप का, चाहे तुम्हारी अन्तरात्मा उसे करने की गवाही देती हो, चाहे न देती हो, चाहे बुजुर्गों, भाई-भतीजों की खून की नदियाँ बहाने का ही कर्म क्यों न हो? श्री अरविन्द कहते हैं कि गीता की यह शिक्षा नहीं हो सकती, 'मानव-धर्म' के लिए मनुष्य आँख मींच कर चल पड़े- यह कैसे हो सकता है ? श्री अरविन्द का कहना है कि गीता मानव को 'मानव-कर्म' के लिए नहीं, 'दिव्य-कर्म' के लिए प्रेरित करती है। 'दिव्य-कर्म' क्या है? इस विश्व का नियन्त्रण मनुष्य नहीं कर रहा, भगवान् कर रहा है, कोई दैवी शक्ति कर रही है। उस दिव्य-शक्ति का विश्व के संचालन में जो उद्देश्य है उस उद्देश्य के साथ एकतानता उत्पन्न कर लेना, उस उद्देश्य को पूर्ण करने में अपनी शक्ति लगा देना ही 'दिव्य कर्म' है। 'दिव्य उद्देश्य' (Divine purpose) को पूर्ण करनेवाला कर्म 'दिव्य-कर्म' (Divine action) है, और जब मनुष्य दिव्य-कर्म करने लगता है तब वह स्वयं कर्म नहीं कर रहा होता, मनुष्य को माध्यम बना कर भगवान् ही कर्म कर रहा होता है, मनुष्य तो निमित्तमात्र होता- निमत्तमात्रं भव सव्यसाचिन् !' 'दिव्य-कर्म' का यह अर्थ नहीं है कि उसमें 'मानव-कर्म' नहीं आता या इन दोनों का सदा विरोध है । समाज-सेवा, अपने- अपने चातुर्वण्यं का पालन, समाज के निश्चित किये हुए कर्तव्य कर्म- ये सब 'दिव्य कर्म' के अंग हो सकते हैं, आजकल के युग में ये 'दिव्य कर्म' के अंग हैं भी, इसीलिए ये चल भी रहे हैं, परन्तु ऐसा अवसर आ सकता है जब 'दिव्य कर्म' और 'मानव-कर्म' में विरोध उठ खड़ा हो। बुद्ध के जीवन में ऐसा अवसर आया, दयानन्द, रामकृष्ण

परमहंस, विवेकानन्द के जीवन में भी ऐसा अवसर आया। उस समय उन्होंने 'मानव-कर्म' को, उस कर्म को जिसे हम 'कर्तव्य कर्म' कहते हैं, परे फेंक कर 'दिव्य-कर्म' को पकड़ा, अन्तरात्मा की पुकार सुनी, अपने भीतर बैठे परमात्मा के आदेश का पालन किया, सांसारिक कर्तव्य अकर्तव्य के मोह में नहीं पड़े। गीता का प्रतिपाद्य विषय यही 'दिव्य-कर्म' है, यही 'निष्काम कर्म' है ।

तो फिर अर्जुन की समस्या का श्री अरविन्द के दृष्टिकोण से क्या हल हुआ? श्री अरविन्द कहते हैं कि गीता बड़े जोर से बतलाती है कि मनुष्य 'कर्म' का कर्ता नहीं है, कर्त्री प्रकृति है, यह त्रिगुणमयी प्रकृति-शक्ति ही मनुष्य के द्वारा कर्म करती है, हमें यह साफ़-साफ़ देख लेना होगा, और सीख लेना होगा कि कर्म के कर्ता हम नहीं हैं, प्रकृति है । प्रकृति भी क्या है? प्रकृति से भी परे, प्रकृति का भी नियन्त्रण करनेवाला, प्रकृति का आधार तथा इसका स्वामी एक चेतन है, प्रभु, इस सब का नियन्त्रण करनेवाला पर-ब्रह्म । वह अपने जीवों के हृदय में विराजमान है, प्रकृति के कर्मों का नियामक है, यह वही है जो कुरुक्षेत्र की समर भूमि में जीवित सेनाओं को भी मार चुका है, जो अर्जुन को इस संहार में केवल यंत्र या निमित्त मात्र बनाये हुए है। अर्जुन क्योंकि दैवीय शक्ति का निमित्त-मात्र है, उसी का एक यंत्र है, इसलिए उसका अपने कर्मों पर कुछ भी दावा नहीं है, अधिकार नहीं है, वह जो-कुछ करेगा अधिकार छोड़कर करेगा, ये कर्म क्योंकि अर्जुन के नहीं, भगवान् के हैं, इसलिए इन कर्मों में कोई फलाकांक्षा नहीं हो सकती, ये निष्काम हैं। श्री अरविन्द के 'दिव्य-कर्म' का यही रूप है। 'दिव्य-कर्म' - शब्द गीता के ४र्थ अध्याय के ९वें श्लोक में आया है।

श्री अरविन्द के 'दिव्य-कर्म' के इस सिद्धान्त से हमें यह सीख मिलती है कि हम में से जिसके हृदय में भी दिव्य-चेतना जागृत हो जाय उसका कर्म मानव कर्तव्य या सामाजिक व्यवहार के लिए अपने को न्यौछावर कर देना नहीं है, उसका कर्म दैवीय चेतना के स्पन्दन के साथ अपने को एक-रस कर देना है भले ही इस प्रकार 'मानव-कर्म' तथा 'दैवीय कर्म' में संघर्ष ही क्यों न पैदा हो जाय।

सही ढंग से संघर्ष एवं सामना करो और अन्ततः तुम्हारे विश्वास को स्थायित्व एवं समर्थन प्राप्त होगा।

-श्रीमाँ

नव जन्म

श्रीअरविन्द का कथन है कि जो व्यक्ति भगवान का चुनाव करता है वह व्यक्ति पहले से ही भगवान द्वारा चुना हुआ होता है। भगवत्ता ही वास्तव में जीवन को उसका असली मूल्य प्रदान करती है, जिसके अभाव में हम निरे पशु हैं। हमारा वास्तविक जीवन तभी प्रारंभ होता है जब हम भगवान की ओर उन्मुख होते हैं। इस विषय में एक कहानी मनन करने योग्य है :-

एक गृहस्थ का घर और चलती हुई जिंदगी। तभी किसी साधु ने द्वार पर दस्तक दी :

"भिक्षां देहि ! भिक्षां देहि ! भगवान तुम्हारा कल्याण करें।"

तत्क्षण, आवाज सुनते ही घर की बहू भिक्षान्न लेकर बाहर निकली। बहू ने साधु को प्रणाम किया पिफर भिक्षान्न उनके पात्र में डाल दिया।

साधु उसके शील और व्यवहार को देखकर प्रभावित हुए और पूछाः प्भद्रे ! तुम्हारी जय हो, कल्याण हो, सौभाग्यवती होओ। पुत्री ! तुम मुझे यह तो बताओ कि इस समय तुम्हारी उम्र कितनी है?य्

बहू ने उत्तर दिया - "२० वर्ष महाराज।"

"और तुम्हारे पति की"

"२४ वर्ष"

तब तक उसकी सास भी वहां पहुंच चुकी थी। अपनी बहू की इस तरह अनर्गल बातें सुनकर सास की त्योरियां चढ़ गइंर् और वे क्रोध से आग बबूला हो उठीं।

तभी महात्मा जी ने बहू से तीसरा प्रश्न किया:-

"और तुम्हारी सास की उम्र?"

"२० वर्ष"

अब तो सास का धैर्य समाप्त हो गया उनके क्रोध का पारा सातवें आसमान पर पहुंच गया और वे गाली-गलौज तथा हाथापाई पर उतर आईं।
इस पर महात्मा जी ने बीच बचाव किया और समझाया कि माता जी आप क्रोध न करें, पहले उसकी पूरी बात तो सुन लें।
तदुपरांत साधु ने बहू से चौथा प्रश्न किया - "तुम्हारे श्वसुर की उम्र क्या है?"
इस पर बहू ने उत्तर दिया - "वह तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।"
बहू की ऐसी अटपटी बातें सुनकर साधु को भारी आश्चर्य हुआ, वे चकित रह गए और कहा - "भद्रे! तुम्हारी बातें बहुत ही रहस्यपूर्ण हैं। क्या अपनी इस पहेली का खुलासा करोगी?"

इस पर बहू ने रहस्य का खुलासा किया और बताया - "महात्मन् जब मैं मात्र २५ वर्ष की एक बालिका थी तभी हमारे गांव में एक योगी का आगमन हुआ। यद्यपि उस समय साधु-संत अथवा धर्म-कर्म में मेरी कोई रुचि नहीं थी, मैं इन्हें खाली ढोंग, पाखंड और अंधविश्वास ही समझती थी, लेकिन अपनी सखी-सहेलियों के आग्रहवश उनके साथ मैं वहां चली ही गई जहां योगी जी का प्रवचन था। पिफर क्या था - योगी जी के प्रवचन से हमारे जीवन की एक-एक परत खुलने लगी, जैसे हम अपनी घोर निद्रा से जाग उठे हों और हमें इस बात का ज्ञान हुआ कि हम कौन हैं। इस संसार में आने का हमारा प्रयोजन और कर्तव्य क्या है? और यह सब जानकर संसार के भौतिक जीवन से हमारा मोहभंग हुआ तथा मैं अपनी अन्तरात्मा व दिव्य जीवन के प्रति सचेत हुई। हे महात्मन्! इसे ही मैं अपना असली जन्म समझती हूं। वैसे तो गिनती के लिए इस समय मैं ३५ वर्ष की हूं लेकिन सच पूछिये तो मेरा असली भागवत जीवन मात्र २० ही वर्ष का है। शेष जीवन तो मैंने यों ही गवाँ दिया। आगे और सुनियेः-

"२० वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और मैं अपनी ससुराल आई, तभी से मेरे इस भागवत जीवन का प्रभाव मेरे पतिदेव पर भी पड़ा तब से हम दोनों एक ही दिव्य पथ के पथिक हैं। मेरे इस विवाह काल के अब २५वर्ष पूरे होने को हैं अतः मैंने अपने पतिदेव की उम्र २५ वर्ष बताई है जो उनके नए दिव्य जीवन की उम्र है।

"हमारे विवाह के पश्चात् कालांतर में हम दोनों का प्रभाव अपनी सास मां पर भी पड़ना शुरू हुआ इसलिए मैंने उनकी उम्र मात्र १० वर्ष की बताई है।
"लेकिन बेचारे हमारे ससुर जी! उन्हें तो अपनी कमाई और धंधे से फुरसत ही नहीं, रात-दित अपने गृह कारज नाना जंजालों में इस तरह डूबे हैं कि वे कभी अपने असली जीवन के बारे में सोच ही नहीं सकते, इसीलिए मैं कहती हूं कि अभी तो वह पैदा ही नहीं हुए।"

आज हम सबकी स्थिति "श्वसुर" जैसी ही है। हम सब इतने जरूरी कामों में व्यस्त हैं कि किसी को भगवान के लिए फुरसत ही नहीं। बेतहाशा सबकी दौड़-धूप जारी है। लेकिन कहां जाना है इस बात का किसी को पता ही नहीं। हमारे जीवन का उद्देश्य कहीं खो गया है और हम सब असली रत्न छोड़कर खाली कंकड़-पत्थर बटोरने में लगे हैं।

वैसे देखा जाए तो आज के वर्तमान युग में पूजा-पाठ करने वालों की कमी भी नहीं, पूरी दुनिया आज मंदिर, मसजिद और देवालयों से भरी पड़ी है। लेकिन प्रश्न उठता है कि फिर भी दुनिया में इतना झूठ और बेईमानी क्यों है? अवश्य ही दाल में कुछ काला है। हममें खोट है और हम सच्चे नहीं हैं। हमारी यह सारी पूजा अर्चना भगवान और सत्य के लिए नहीं, बल्कि अपनी लोभ-लालसा और मान मनौती की पूर्ति और पाप धोने के लिए है। अपने कारोबार में लाभ और अपनी मनचाही वस्तु की प्राप्ति के लिए है। भगवान तुम मुझे अमुक धंधे में एक लाख का मुनाफा करा दो, मैं तुम्हारे लिए सौ रुपये का भोग चढ़ाऊंगा। वाह! कितना बढ़िया सौदा है यह! मानो भगवान हमारा नौकर हो। हम जब जो चाहें वह उसे पूरा करता जाये बस। और यदि अपनी इच्छा पूरी नहीं हुई तो बस ईश्वर पर अपनी आस्था समाप्त। भगवान नाम की कोई चीज इस दुनिया में है ही नहीं। तो यह है हमारी आज की मनःस्थिति।

लेकिन स्पष्ट है कि यह सब श्रीअरविन्द योग में नहीं चलेगा। श्रीमाताजी पूछती हैं कि "तुम योग साधना किसलिए करना चाहते हो? क्या तुम भगवान के लिए साधना करना चाहते हो? क्या भगवान ही तुम्हारे जीवन के परम सत्य हैं, यहां तक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं सकते ? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवन का कोई अर्थ नहीं है ? यदि ऐसा है तभी कहा जा सकता है कि तुम्हारे अंदर इस योग मार्ग के लिए पुकार है।"

और यह पुकार सचमुच में अपनी आत्मा का जागरण है, हम पर भगवान की महान कृपा है। हमने इसलिए उनकी चाह और चुनाव किया क्योंकि उन्होंने पहले से ही हमारा चुनाव कर लिया है और हमारा यह आत्मजागरण उन्हीं की कृपा का फल है। अस्तु हम इस भागवत मुहूर्त को खोयें नहीं, उसका प्रतिक्षण सदुपयोग करें और हानि-लाभ का हिसाब करने में इस अमूल्य समय को नष्ट न करें।

श्रीअरविन्द और श्रीमाताजी ने अपने पूर्ण योग का केवल ज्ञान ही नहीं दिया है बल्कि स्वयं उस पथ पर चलकर तथा जीवन को विकसित कर हमारे सामने अपना एक जीवंत आदर्श भी प्रस्तुत किया है। श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी उनके योग की एक अनुपम प्रयोगशाला है जहां दुनिया के विभिन्न कोनों से विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले - बड़े-बड़े दार्शनिक, मनीषी, साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, उद्योगपति,

क्रांतिकारी देशभक्त तथा श्रमिक आदि सब तरह के लोग जिज्ञासु के रूप में पांडिचेरी आए और अपने महान गुरु के मार्गदर्शन में रहकर साधना की। इस तरह एक लघु विश्व के नए सृजन और उसके अभूतपूर्वरूपांतर का कार्य यहां से प्रारंभ हुआ तथा साथ ही साथ फ्सुवसुधैव कुटुम्बकम्य् का आदर्श उदाहरण भी परिलक्षित हुआ। आगे चलकर श्रीमाताजी ने ओरोवील या उषानगरी की स्थापना की जो विश्वबंधुत्व एवं मानव एकता की दिशा में उठाया गया अगला चरण है।

साधना का तात्पर्य है अपने इष्ट और आदर्श पर अनुशासित होकर उस पर एकाग्र होना और वही बन जाना। श्रीअरविन्द का योग है भगवान के लिए और स्वयं वही बन जाने के लिए, इस जीवन को दिव्य और सुंदर बनाने के लिए।

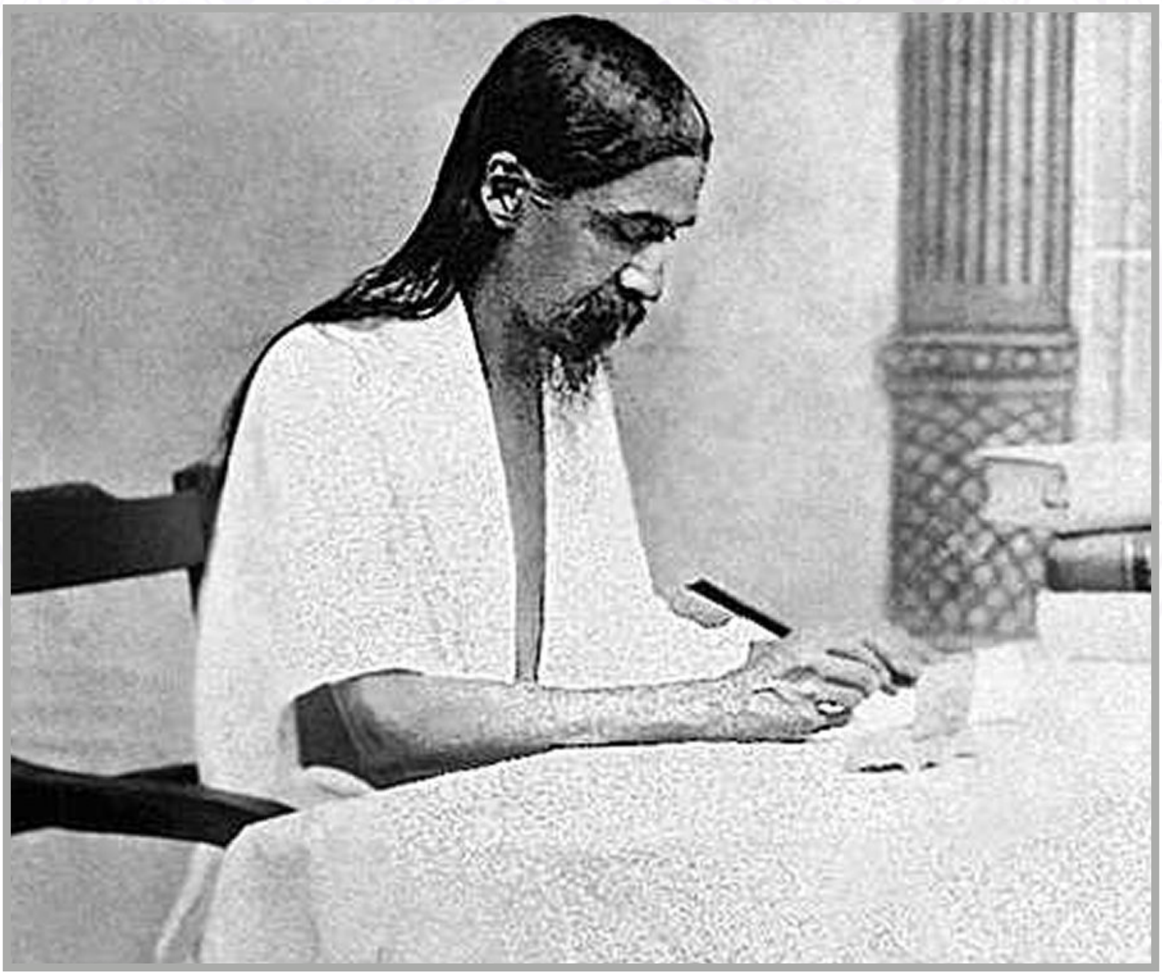

बिना तुम्हारे
पौधों में फूल
फूलों में सौरभ
हवाओं में स्पर्श
जीवन में रस
खो जाते हैं कहीं।
मैं नहीं जान पाती
कौन सा है घर मेरा
मैं टिकूँ कहाँ तुम्हारे बिना
- विमला गुप्ता

श्रीमती विमला गुप्ता जिन्होंने श्रीमां और श्रीअरविंद के साहित्यानुवाद में समर्पित जीवन बिताया । 3 सितंबर को उनका जन्म दिवस था। उनका स्मरण करते हुए सोचा आप सबके साथ उनके द्वारा अनूदित श्री अरविंद की कुछ कविताओं के हिंदी रूपंतरण का आनंद लिया जाए, तो प्रस्तुत हैं श्री अरविंद की कुछ कविताएँ...

नील-पक्षी

मैं भगवान का पक्षी हूँ उसके नील आकाश में ;
देव सदृश उत्कृष्ट एवं निर्मल
मैं गाता हूँ गीत सत्य एवं मधुरता के
उस महाप्रभु एवं देवदूत के श्रवण हेतु ।

मैं अग्नि के समान उठता हूँ ऊपर इस मरण धर्मा धरातल से
विषादहीन नीले नभ की ओर
और टपकाता हूँ इसके जन्म की दुःख ग्रस्त मिट्टी में
परम आनन्द के अग्निल-बीज ।

काल और अन्तरिक्ष के परे मेरे पंख भरते हैं उड़ान
अक्षय अनन्त प्रकाश की ओर ;
मैं ले आता हूँ उस शाश्वत के स्वरुप का परम सुख
और आत्मा के दर्शन का वरदान ।

मैं निरखता हूँ समस्त लोकों को अपने रक्त वर्णी नेत्रों से;
मैंने लिया है बसेरा ज्ञान के वृक्ष पर
जो भरा हुआ है स्वर्ग के पुष्पों से
परम अनन्त की जलधाराओं के तट पर ।

कुछ भी नहीं छिपा है मेरे ज्वलन्त ज्योर्तिमय हृदय से;
मेरा मन है असीम और निःस्तब्ध;
मेरा गीत है परम आनन्द की रहस्यमयी कला,
मेरी उड़ान है अमर संकल्प ।
महानिशा का तीर्थयात्री
श्री अरविंद.

भागवत श्रम

मैंने अपने स्वप्नों को एक रजत आभामयी हवा में संजोया
नीले आकाश एवं स्वार्णिम प्रकाश के बीच
और कोमलता से उन्हें लपेट छोड़ दिया वहीं,
मेरे वे स्वप्न जो तुम्हारे लिए थे।

मैनें आशा की थी बनाने की एक इन्द्रधनुषी सेतु
धरा और आकाश को बांध परिणय बंधन में
और उगा देने की इस थिरकते लघुग्रह में
अनन्तता के गुण स्वभाव।

लेकिन बहुत प्रभावान थे हमारे स्वर्ग, बहुत दूर,
बहुत सुकुमार थे उनके पारलौकिक उपादान ;
बहुत उज्जवल और आकस्मिक था हमारा प्रकाश जो नहीं ठहर सकता था;
क्योंकि उसकी जड़े नहीं थीं पर्याप्त गहरी।

वह जो स्वर्ग को लाएगा यहाँ धरा पर
उसे स्वयं उतरना होगा इसकी मिट्टी में इस भूमि पर
और वहन करना होगा पार्थिव भौतिक पृथ्वी के स्वभाव का बोझ
और चलना होगा इसके दुर्गम मार्ग पर।

अपना देवत्व त्यागकर मैं आया हूँ, नीचे
यहाँ इस दीन-हीन पृथ्वी पर,
जन्म और मृत्यु के दरों के बीच जूझती
इस अज्ञानी, संघर्षरत मानव उपज के बीच।

मैं खोद रहा हूँ एक गहरी और लम्बी शैया
अत्यंत भयावह और घिनौनी कीचड़ से होकर
एक स्वर्णिम नदी के गीत के लिए,
बना रहा हूँ एक घर अमर अग्नि के निवास के लिए ।

इस जड़ीभूत रात्रि में मैंने किया है असाध्य श्रम और झेला है दुख
लाने के लिए वह अमर अग्नि मनुष्य के लिए;
लेकिन नारकीय घृणा और मानवीय द्वेष
सृष्टि की शुरुआत से ही रहे हैं मेरे इनाम ।

क्योंकि मनुष्य का मन प्रवंचना है उसके पशु तत्व का;
जो अपनी लालसाओं की विजय की आशा करता है,
उसने अपने अन्दर एक क्रूर बौने को सदा किया है पोषित
जो दुख और पाप में है सदा ही लिप्त ।

यह मलिन बौना स्वर्गीय प्रकाश से है थर्राता
और सभी सुख शुचिता एवं पवित्रता से है घबराता;
केवल मस्ती और दुख के द्वारा ही
उसका नाटक सदा जारी रहता ।

चारों ओर अन्धेरा और संघर्ष है;
क्योंकि वे दीपक जिन्हें मनुष्य पुकारते हैं सूर्य
छुटपुट स्फलिंग हैं लड़खड़ाते इस जीवन पथ पर
जो किसी 'अनश्वर' ने यहाँ छितराए हैं ।

मनुष्य अपनी आशा के नन्हें-नन्हें दीये जलाता है
जो ले जाते हैं उसे विफलता की कगार पर;
सत्य का एक अणु उसकी विशालतम सीमा हैं,
एक सराय उसकी तीर्थयात्रा ।

सत्यों के परम सत्य से मनुष्य डरते उसे नकारते हैं;
प्रकाशों के परम प्रकाश को अस्वीकारते हैं;
अज्ञानी देवताओं को अपना क्रन्दन सुनाते हैं
अथवा किसी असुर की देहरी अपनाते हैं ।

वह सब जो पा लिया गया था पुनः खोजना है,
हर घायल दुश्मन पुनः जी उठता है,
निष्फल जीवन की प्रत्याशाओं से होकर
प्रत्येक युद्ध सदैव पुनः पुनः लड़ा जाता है ।

मेरे खुले हुए घाव हजारों हैं
और शैतान के राजा मुझ पर करते हैं सतत प्रहार,
लेकिन जब तक मेरा कार्य नहीं होता पूरा मैं नहीं लूंगा विश्राम
और शाश्वत संकल्प को रुप देता रहूँगा अविराम ।

कितना उपहास और तिरस्कार करते हैं, दोनों मनुष्य और शैतान!
"तुम्हारी आशा कपोल कल्पना का सिर है
आसमान को अपने आग्नेय धब्बों से रंगते हुए;
तुम गिर जाओगे और तुम्हारा कार्य मर जाएगा ।"

"तुम कौन हो जो बड़बड़ा रहे हो स्वर्गिक ऐश्वर्यों के
आनन्द और सुनहरे कक्ष के बारे में
हमारे समक्ष, हम जो हैं अचेतना के समुद्रों पर बेघरों की तरह
और ज़िन्दगी के लौह प्ररब्ध से हैं बंधे ?"

यह महानिशा की भूमि है, यह पृथ्वी हमारी है
जो हमारी क्षुद्र टिमटिमाती रोशनियों के लिए बनी है।
यह कैसे धारण कर सकती हैं उस पवित्र प्रकाश को
या सह सकती है एक देव संकल्प को?

"आओ, हम उसका वध कर दें और खत्म कर दें इसकी प्रक्रिया को !
तब हमारे हृदय मुक्त हो जाएँगे
उसके बोझ एवं उसके वैभव व शक्ति की पुकार से
और उसकी वृहद् धवल शान्ति के नियन्त्रण से ।"

लेकिन वह देव तो मेरे नश्वर सोने में हैं विराजमान
जो भाग्य और भूल से जूझता है निरंतर अविराम
और मिट्टी और पंक में गढ़ता है एक पथ
उस नामहीन निष्कलंक के लिए।

एक आवाज़ गूँजी, "जाओ वहाँ जहाँ नहीं गया है कोई।
गहरे और गहरे खोदने जाओ
जब तक तुम न पहुँच जाओ नींव के पत्थर तक
और न खटखटा दो वह चाभीहीन द्वार।"

वहाँ मैंने देखा एक असत्य बो दिया गया था गहरे
वस्तुओं की जड़ों में
जहाँ 'धूम्रवर्ण नरदानव' भगवान की रहस्य निंद्रा की करता है रखवाली
फैला हुआ एक विशाल दैत्य के पंखों पर।

मैंने छोड़ दिया मन के देवों का स्तर
और जीवन के असंतुष्ट सिन्धुओं को
और डुबकी लगाई देह के अन्ध गलियों से होकर
अधोलोक के रहस्यों तक।

मैनें खोज की है गूंगी पृथ्वी के त्रासित हृदय के अन्तर की
सुनी है उसकी ईशानिन्दक घण्टियाँ ।
मैंने देखा है उस उदगम को जहाँ से उसकी पीड़ाएँ होती हैं शुरू
और नरक के अन्दरूनी कारण को।

मेरे ऊपर दानव करता है विलाप
और पिशाच की गुर्राहट गूँजती है;
मैंने बेध दिया है उस शून्य को जहाँ 'विचार' जन्म था,
मैं तलहीन गर्त मैं हूँ घूमा।

एक नैराश्य सीढ़ी पर मेरे कदम चढ़े हैं
असीम शान्ति का पहने कवच,
उतार लाने के लिए ईश्वर की भव्य आग्नियाँ
मानव जीवन के इस गहर में।

'वह' जो मैं हूँ अभी तक मेरे साथ था;
अब सारे आवरण चिरते जा रहे हैं।
मैंने सुनी है उस परम की वाणी और किया है धारण उसके संकल्प को
अपने शान्त वृहद् भाल पर।

निचाइयों और ऊँचाइयों के बीच का गड्ढ भर गया है
और स्वर्णिम जलधाराएँ उमड़ने लगी हैं
नीलमणि पर्वतों की इन्द्रधनुषी चोटियों के नीचे
एक तट से दूसरे तट तक लहरा रही हैं ।

स्वर्गिक अग्नि प्रभा पृथ्वी के सीने में हो गई है प्रदीप्त
और अनश्वर सूर्य अपना प्रकाश कर रहे हैं विकीर्ण;
एक अद्भुत दरार से होकर जन्म की परिधियों में
देह-धारण को लालायित है देवात्माएँ ।

लपटों के समान सत्य और आनन्द के राज्यों तक:
नीचे से एक स्वर्णिम लाल सीढ़ी हो गई है निर्मित
जिससे होकर स्वर्ग के प्रभावान बालक
अंधेरे की समाप्ति की कर रहे हैं घोषणा ।

थोड़ा सा और बस नए जीवन के द्वार
सज्जित हो उठेंगे धवल प्रकाश में
अपनी सुनहरी छतों और सुन्दर फर्शों के साथ
एक महान निरावृत्त और उज्जवल विश्व में ।

मैं छोड़ दूँगा अपने स्वप्नों को उनकी रुपहली हवाओं में,
क्योंकि सुनहरे और नीले परिधान में
पृथ्वी पर विचरण करेगा सदेह साकार और सुन्दर
तुम्हारा जीवन सत्य ।

महानिशा का तीर्थयात्री - श्री अरविन्द
अनुवादिका -विमला गुप्ता

श्रीअरविन्द का जन्मदिन

छोटे नारायण शर्मा

सन १९२४ ईस्वी में श्रीअरविन्द का जन्म दिवस मनाया गया, उसका वर्णन एक साधक ने अत्यंत ही सजीव और विस्तृत ढंग से किया है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है :

'अपने शिष्यों के साथ सभी प्रकार का संबंध रखना, उस संबंध को ठोस और सजीव बना देना दिव्य गुरु का सबसे बड़ा लक्षण है। शिष्य समझता है कि वे उसके अपने हैं और हमको अपना बना लेते हैं। हर कोई समझता है कि गुरु उसी को सर्वाधिक प्यार करते हैं और यह सही है कि प्रत्येक को वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। यह कोई भ्रांत अनुभूति नहीं हैं, धोखा अथवा भ्रम नहीं है; यह तो अत्यंत ही ठोस सत्य हैं। जिस क्रियात्मक स्वतःसारित नियम के वे मूर्त विग्रह हैं, वह है भागवत् प्रेम।"

"सभी साधकों में आत्मदान का आनंद बह रहा है। यह निवेदित होने का आनंद है, इसी की झलक चारों ओर विराज रही है। सभी निवेदित हैं, सभी समर्पित हैं, व्यक्ति कितना स्वतंत्र अनुभव कर रहा है, कितना हल्का, कितना भार शून्य। कोई है जो तुम्हारा सारा बोझ उठा ले, यह है भागवत प्रेम की शक्ति । उसका विश्वास निर्द्वंद्व किया जा सकता है। अपनी क्षुद्र अहंता उसके चरणों में डाल दो, बाकी सारा उसका काम है, कोई झंझट नहीं, कोई चिंता नहीं। कोई प्रयत्न भी नहीं - प्रेममय आत्म-निवेदन कितना आसान है।"

" प्रत्येक चेहरे पर समर्पण का यह आनंद लिखा हुआ है। हर कोई आनंदित है, उत्फुल्ल है और इसका कोई बाहरी कारण नहीं है, भौतिक कोई भी वस्तु नहीं जो इसका आधार हो। कहां से यह असीम आनंद फूट रहा है? लोग कहते हैं कि दो-तीन सालों से श्री अरविन्द इतने प्रसन्न कभी नहीं दिखे थे।"

"सुबह से ही आश्रम में तरह-तरह के काम हो रहे हैं। सजावटें हो रही हैं, फूल-मालाओं में, भोजन-स्नान में लोग लगे हैं, सब में दर्शन की उदग्र पिपासा है। जैसे समय बीतता है, आनंद सागर में हिलोरें उठ

रही हैं, दर्शन जो है। हम रोज़ ही उन्हें देखते हैं लेकिन आज दर्शन है। आज हर कोई व्यक्तिगत रूप से उन्हें देखेगा। एक के बाद एक। इन सारी क्रियाओं के बावजूद भी चेतना एकाग्र होती चली जा रही है। आज दर्शन है किसी मानवी रूप का नहीं- परात्पर प्रभु का। आज इन्हीं नयनों से लोग भगवान् को निहारेंगे।"

"और वह देखिये, वहां बरामदे में वे सिंहासन पर दिव्य महिमा से मंडित बैठे हैं। बैठने के भाव में भी एक दिव्य आत्मविश्वास झलक रहा है। इन योगेश्वर के हृदय में, परम गुरुदेव के हृदय में स्नेह का समुद्र उमड़ रहा है। उमड़-उमड़ कर वह आकाश को छूना चाहता है अथवा मनुष्यों को अपने भीतर समेट लेना चाहता है? जिन्होंने इसे देखा है वे ही किंचित इसकी दिव्य महिमा को समझ सकते हैं। जिसने एक बार भी इस सागर में डुबकी लगायी, वह इसके बाहर नहीं आया। श्वेत और रक्त पद्मों की मालाओं से विभूषित वे वहां सिंहासनासीन हैं। साधकों की यह लघु पुष्पांजलि ही है। हृदय धड़क रहे हैं, प्रार्थना, विनती, भावावेग उठ रहे हैं और ऊपर से धारासार आशीर्वाद बरस रहा है। शंकाएँ संशय सभी बह रहे हैं। सभी मानवी आवश्यकताएं वह पूरी कर रहा है और सब को पूरी कर रहा है। कृपा और प्रेम की यह अनंत वर्षा है और उनकी वह दृष्टि जो विमोहित कर लेती, वश में कर लेती है, कौन इसे भूल सकता है? जिसमें प्रेम है, कृपा है, अनिर्वचनीय दिव्य महिमा है। यदि परात्पर प्रभु यहां नहीं तो वे और कहां हो सकते हैं।"

" चार बजे शाम की बैठक के लिये जब श्रीअरविन्द आनंद बिखेरते हुए आये तो उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा, 'आप लोग क्या चाहते हैं? शांति या भाषण? मानो वे इच्छित वरदान देने के लिये ही आज आये थे। कुछ काल तक शांति रही। फिर उसी शांति में एक धारा प्रवाहित हुई। शिष्यों के हृदय आशा से उदग्र थे क्योंकि आज वे मानव की वाणी नहीं बल्कि भगवान् की वाणी सुन रहे थे। कैसा सौभाग्य, यह कैसा परिवर्तन! मानवी कानों से भगवान् की वाणी का श्रवण।"

सन १९२४ के प्रारम्भ में ही काकिनाडा कांग्रेस महासभा से लौटते हुए कई लोग पांडिचेरी आये। उनमें कई लोग ऐसे थे जिनका परिचय आश्रम में रहने वाले लोगों से था। फ्रांसीसी पुलिस के साथ इन लोगों का झगड़ा हो गया। मामला बढ़ गया और आसार ऐसे दिखलायी पड़ने लगे कि आश्रम भी उस झगड़े में फँस जायेगा। श्रीअरविन्द ने कहा, " बाहरी शक्तियों की यह एक उस ढंग की चेष्टा है जिससे वे आश्रम में जो शांति का वातावरण बहुत कठिनाई से हमने बनाया है, उसे भंग कर दें। "

सामूहिक ध्यान भी २२ जनवरी से स्थगित कर दिया गया। इसके बारे में जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा, "बराबर ही इसे एक ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा है जो आवश्यक आध्यात्मिक वायुमंडल निर्माण करें। यह वायुमंडल उस व्यक्ति की उपस्थिति में संभव होता है, चेष्टा करके इसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता।"

सांध्यकालीन बैठक भी अब स्थगित हो गयी। कुछ साधक इससे चिंतित हुए से दिखने लगे। अब साधकों के लिये दिन निर्धारित कर दिये गये जब वे पास जाकर साधना संबंधी कठिनाइयों अथवा चेष्टाओं में मदद ले सकते थे। ऐसा क्यों किया गया, इसका एक कारण संभवतः यह था कि श्रीअरविन्द को सांध्य वार्तालाप के लिये चेतना की अपनी स्थिति से नीचे उतरना पड़ता था। यह विश्वास किया जाता था कि वे अपनी साधना पूरी कर लें, भौतिक चेतना में पूर्णता प्राप्त कर लें तब सभी साधकों को उसका लाभ मिल सकेगा।

२४ नवम्बर, १९२६ के बाद तो श्रीअरविन्द ने दूसरों की सहायता करने का काम श्रीमां के ऊपर ही छोड़ दिया।

सांध्यकालीन बैठक बहुत काल तक स्थगित न रही। पीछे यह शुरू हो गयी। मार्च, २६ की बैठक में उन्होंने अतिमानसी योग के संबंध में कहा था कि यह योग पहले किसी ने नहीं किया था, पहले जितने भी प्रयत्न हुए वे तो तैयारी मात्र थे और यदि किसी ने किया था तो उसकी परम्परा अविच्छिन्न न रह सकी। काल-प्रवाह में वह खो गयी।

उनसे पूछा गया, क्या यह हो सकता है कि किसी समय अतिमानस पहले भी उतरा हो और पीछे अपने लोक में लौट गया हो?

श्री अरविन्द का जवाब था, "यदि कोई अवतार अतिमानस तक पहुंचा हो तो यह आश्वासन था। सत्य जड़तत्त्व में रूपांतरित नहीं हुआ। मैं इतना कह सकता हूं कि यदि इसकी चेष्टा भी की गयी तो यह सक्रिय तत्त्व के रूप में जगत में प्रतिष्ठित नहीं हुआ। सत्य को उच्च तत्त्व में उतारने में कठिनाई उतनी नहीं है जितनी जड़तत्त्व में उतारने में। इसके लिये सारे पार्थिव नियम को बदल डालना होगा और एक नये वायुमंडल की सृष्टि करनी होगी। सवाल इसका नहीं है कि केवल ज्ञान और शक्ति हो वरन् उनको नीचे कैसे लाया जाये।"

"लोगों में इन चीजों के बारे में बड़े सीधे विचार हैं लेकिन जितना लोग सोचते हैं उतना सीधा यह है नहीं। यह अत्यंत ही जटिल गतिविधान है। ऊपर एक सत्य है। जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान और तुम्हारी शक्ति बढ़ती जाती है, तुम ऊपर से ऊपर चढ़ते जाते हो परन्तु नीचे यह वस्तु एकाएक नहीं आती। यह तब उतरती है जब सब कुछ तैयार हो जाता है। यदि एक बार यह पार्थिव स्तर पर का नियम बन गया तब यह टिकाऊ हो जायेगा। जब तक गति मिश्रित है तब तक इसकी धारा को निर्बाध रूप से नीचे प्रवाहित रखना संभव नहीं।"

प्रश्न: "क्या आपका विश्वास है कि इस बार काम हो जायेगा ?"
श्रीअरविन्द: "मैं जानता हूं कि यह किया जा सकता है। लेकिन भविष्यवाणी करने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं यह नहीं कह सकता कि "यह होगा'। परन्तु इतना मैं कह सकता हूं कि 'इस बार कुछ होकर रहेगा' मन में कहीं पर संदेह है; एक

प्रकार की अनिश्चितता है। पीछे सारी चीज तैयार है। यदि मन के स्तर पर भी निश्चितता आ जाये तो यह होकर रहेगा। निश्चितता जहां होती है वहां संघर्ष की गुंजाइश नहीं होती है। आज तक ऐसा नहीं हो सका इसका कारण शायद यह था कि विरोधी शक्तियां बहुत शक्तिशालिनी थीं।"

"यदि मैं मायावाद को नहीं मानता हूँ, तो इसका मतलब यह नहीं है कि इसका सत्य मुझे ज्ञात नहीं है अथवा 'सर्वभूत स्थित एक' को अथवा 'सबको एक में' मैंने नहीं देखा है। परन्तु मुझे सत्य की अन्यान्य उपलब्धियाँ भी हुई हैं जो इसी तरह शक्तिशालिनी हैं और जिन्हें मैं हटा नहीं सकता। रमण महर्षि सत्य हैं लेकिन और लोग भी सत्य हैं।"

"आत्मा की उपलब्धि ही सब कुछ नहीं है। उसके बाद भी बहुत चीजें हैं। भागवत गुरु आगे बढ़ने देते रहे; अनुभूतियों पर अनुभूतियां वे देते रहे, मैं ऊपर से ऊपर चढ़ता रहा, बिना ठहरे मैं तब तक बढ़ता रहा जब तक कि मुझे अतिमानस की झलक न मिली।"

२९-१२-१९३८
प्रश्न: जब मानवी चेतना का स्थान दिव्य चेतना (भागवत् चेतना) ले लेती है, तब क्या होता है?

श्रीअरविन्द: एक अखंड शांति, एक अखंड शक्ति का अनुभव होता है, व्यक्ति सनातन में निवास करता है, असीम के साथ उसकी चेतना मिल जाती है। प्रत्येक चीज ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति बन जाती है। उदाहरण के लिये जब कमरे की ओर देखता हूं तो सारी चीजें मुझे ब्रह्ममय दिखलाई पड़ती है- यह भाव चिंतन नहीं है, यह तो एक ठोस सत्य है। दीवार और पुस्तक भी ब्रह्ममय दिखलाई पड़ती है। मैं तुझे 'क्ष' के रूप में नहीं देखकर भगवान् में ही एक ब्रह्ममय पुरुष देख रहा हूं। यह तो एक आश्चर्यजनक अनुभव है।

१-१-१९३२
१५ अगस्त १९२४ को श्रीअरविन्द ने साधकों को जो कुछ कहा उसमें उनके योग की वास्तविक गतिधारा का परिचय है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है:

....मैं तो मौन चेतना के द्वारा ही अपनी वाणी सुनाना चाहता हूं, क्योंकि बोलकर जो कुछ कहा जाता है, वह मन तक पहुंचता है, परन्तु मौन चेतना अधिक गहराई में उतरती है। योग के नाम से जो साधना पथ विख्यात है और जिन्हें हम जानते रहे हैं, उनसे हमारा योग कुछ भौतिक तत्त्वों में पृथक है। पुराने योगों में जो बात है वह यह कि ज्ञान अथवा भावावेग अथवा संकल्प को चुन लिया जाता है और उसके सहारे पुरुष

और प्रकृति को सचेतन आत्मा और प्रकृति को विलग कर दिया जाता है। उसमें जहां हम पहुंचते है वह होता है अनंत ज्ञान, सर्व सुंदर प्रेममय परात्परं तत्त्व अथवा अनंत निर्वैयक्तिक संकल्प अथवा अवाङ्गनसगोचर ब्रह्म।"

"हमारा योग ज्ञान, संकल्प अथवा आनंद के निर्वैयक्तिक अनंत की खोज नहीं करता; यह प्राप्त करना चाहता है परात्पर पुरुष को अनंत ज्ञान को जो मानव ज्ञान की सीमा से अतीत हैं, अनंत शक्ति को जो हमारे व्यक्तिगत संकल्प का आधार है, उस आनंद को जिसे हमारा सतही भावावेग नहीं पकड़ सकता।"

"मैंने कहा है कि जिस परात्पर पुरुष को हम प्राप्त करना चाहते हैं, वह एक निर्वैयक्तिक अनंत नहीं है, वह तो दिव्य पुरुष है और उसको जानने के लिये हमें अपनी प्रकृति के हर स्तर पर सचेतन होना होगा। तुम्हें स्वयं अपने आभ्यंतरीण व्यक्तित्त्व के प्रति सचेतन होना होगा। यह व्यक्ति आंतरिक प्राणमय अथवा मनोमय अथवा अन्नमय सत्ता नहीं है जैसा कि भ्रांतिवश कभी-कभी सोच लिया जाता है, वरन् यह तो वह शुद्ध पुरुष है, जो उच्चतम के साथ सीधे तौर पर संबंधित है। मनुष्य प्रकृति के स्वाभाविक विकास के साथ विकसित होता है और हर मनुष्य को अपने दिव्य पुरुष को प्राप्त करना है जिसका अवस्थान अतिमानस है। प्रत्येक व्यक्ति मूल रूप में भगवान् के साथ एक परन्तु प्रकृति में वह उनकी आंशिक अभिव्यक्ति है।"

"हम लोगों का लक्ष्य ऐसा है इसीलिये हम लोग चाहते हैं जीवन को फिर से पकड़ना और इसको रूपांतरित कर देना..."

"हम लोगों को अपनी सत्ता के हर स्तर पर सचेतन होना होगा और ऊंची शक्ति, प्रकाश तथा आनंद को यहां उतार लाना होगा जिससे कि जीवन का अतिबाह्य व्यापार भी उन्हीं से अनुशासित हो। हम लोगों को पृथक होकर देखना होगा कि प्रकृति में क्या चल रहा है - छोटी से छोटी गति और बाहरी से बाहरी कर्म में भी कुछ ऐसी चीज न बचे जिसे हम न देख पायें। मन अथवा प्राण में तो ऐसा करना अपेक्षाकृत आसान है। लेकिन अन्नमय प्राण में अथवा अन्नमय सत्ता में अज्ञान अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ निवास कर रहा है और कब्जा जमाये हुए है और वह समझता है कि वहां का वही सनातन नियम है। ऊंचे प्रकाश को जब उस तक लाया जाता है तो वह रास्ता रोक देता है और अपना झंडा उड़ाने लगता है। वहीं पर अज्ञान की शक्तियां सत्ता को बार-बार ढक देती हैं और जब अन्नमय प्राण खुलता भी है तो अन्नमय सत्ता के और भी नीचे से कठिनाइयां ऊपर आना शुरू कर देती हैं। यहां बड़े धीरज की आवश्यकता होती है। अन्नमय प्राण और अन्नमय पुरुष ऊंचे विधान को नहीं मानते और अपनी आदत पकड़े रहते हैं। वे बुद्धि अथवा तर्क के आधार पर अपनी आदतों को न्याय सिद्ध करते रहते हैं और इस प्रकार साधकों को भ्रांत किया करते हैं।"

"प्रकाश को उतरने की और जीवन की छोटी-से-छोटी बात को अनुशासित करने की दूसरी शर्त यह है कि व्यक्ति अपने भागवत पुरुष के बारे में सचेतन हो जो अतिमानस में निवास करता है।"

"साधकों में कभी-कभी अनुभूतियों को प्राप्त करके संतुष्ट हो जाने की प्रवृत्ति है। अनुभवों को ही प्राप्त कर व्यक्ति को संतोष नहीं मानना चाहिये।"

एक दफे श्रीअरविन्द ने अपनी साधना के बारे में कहा था, "जब मैं मन के स्तर पर साधना कर रहा था तो चीजें इतनी आसानी से घटित हो जाती थीं कि वह बच्चों के खेल जैसा लगता था। प्राणमय पुरुष के साथ यद्यपि यह आसान नहीं था। फिर भी वह मनोरंजक था। परन्तु यह शरीर तो अत्यंत ही कठिन है। पुराने योगियों के द्वारा कभी इसकी चेष्टा ही नहीं की गयी, यह बराबर ही भुला दिया गया है। यह बात नहीं कि चेष्टा ही नहीं की गयी वरन् अन्नमय मन और अन्नमय प्राण भुलाये जाते रहे। सारी कठिनाई वहीं जमा है। उसे जीतने की जो भी चेष्टा की जाती है वह अत्यंत ही नीरस और श्रमसाध्य है। यह तो विराम रहित खाई का युद्ध है। या तो व्यक्ति को युद्ध करते जाना है जब तक कि वह जीत न जाये अथवा उसे हार जाना है।"

ऐसी थी वह स्थिति जिसमें योग शक्ति को काम करना पड़ रहा था; ऐसा था श्रीअरविन्द का योग और ऐसी थी उसकी कठिनाइयां। उपनिषद में कहा गया है 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' छुरी की तेज धार के समान मुश्किल है यह पथ; परन्तु वह पथ जो नीचे आता है, वह जो जड़तत्त्व के मरुप्रसार में क्रियान्विति चाहता है वह तो और भी दुरत्यय है, और भी दुर्गम है।

परन्तु एक बात! पहले के योगियों को हम देखते हैं कि वे जनपथ से दूर एकांत साधना में तल्लीन रहा करते थे। शरीर की तपस्या भी उनकी असाधारण थी और कभी-कभी तो साधारण भूख प्यास के अलावा वे असाधारण शीत ताप की सन्निधि में भी शरीर को तपोमग्न रखते थे। उनकी होती थी अत्यंत कठिन साधना, शरीर की साधारण आवश्यकताओं का भी त्याग, प्राण की वृत्तियों का अतिशय निग्रह, मन का सबल नियंत्रण, ये कुछ ऐसे विधान थे जिनका पालन परंपरागत योग का अभिन्न अंग-सा हो गया था। फिर उन योगों की सिद्धियां भी थीं असाधारण, चमत्कारपूर्ण। परन्तु श्रीअरविन्द का यह योग हिमालय की किसी निर्जन गुफा में नहीं, फ्रेंच भारत की राजधानी में चल रहा था। समय पर भोजन-पानी, अशन-वसन की व्यवस्था इसमें थी। बाहर-बाहर तो इसमें कुछ था ही नहीं, आज भी कुछ नहीं है। न रँगे वस्त्र, न जटाजूट, न तिलक-चंदन, न आरती पूजा का विधान। चमत्कारों का निरावृत्त प्रदर्शन भी नहीं; न महीने-महीने चलने वाला अनशन, न सप्ताहों की समाधि। सच पूछिये तो निराहारिता अथवा समाधि जो योगी के विधि सम्मत लक्षण हैं, उन्हें इस आश्रम में, लगता है, प्रवेश की इजाजत नहीं है। श्रीअरविन्द के इर्द गिर्द सभी कुछ साधारण है, असाधारण भी साधारण के लिबास में ही दिखलायी पड़ता है।

श्रीअरविन्द का योग ही असाधारण के साधारणीकरण का योग है। जो ज्ञान आंखों को बंद करके प्राप्त किया जाता है, जो सत्य प्रपंच-शमन से ही प्राप्त होता है, जो ज्योति जानी पहचानी बत्तियों को बुझाकर देखी जाती है, यह सब जानना देखना होगा आंखें खुली रखकर, जीवन की साधारण अवस्थाओं में रहते हुए। तब जीवन ही एक महान चमत्कार है- क्योंकि यह खंडित, अल्पकालिक अज्ञानग्रस्त जीवन ही शाश्वत जीवन की, सनातन की गौण विभूति है। यदि सनातन की दिव्य महिमा इसको आलोकित कर दे, यदि परम प्रकाश और आनंद की स्वर्गगंगा, यहां इस धरती पर प्रकट हो जाये तो यही जीवन चमत्कारों का चमत्कार बन जाये। हम जिसे चमत्कार समझकर आज तक प्रभावित होते रहे हैं वह तो परम अद्भुत की एक क्षीण, खंडित अथवा विपर्यस्त झलक मात्र है। परम ज्योति से आलोकित तो यह जीवन ही सनातन आश्चर्य का पार्थिव विधान बन जाता है। तब सभी अद्भुत सभी चमत्कार बन जाता है। हाँ, जो अति तुच्छ है, अति साधारण है, वह भी सनातन की ही महिमा का सीमाबद्ध रूपायण है। विवेकानंद ने कभी समाधि और नींद में फर्क बतलाते हुए कहा था कि नींद में जाने से पहले यदि कोई गधा था तो जगने पर वह गधा ही रहता है। परन्तु समाधि में जाने के पहले जो गधा था, वह लौटता है वहां से ब्रह्म का ज्ञान लेकर ब्रह्मज्ञानी बनकर। परन्तु श्री अरविन्द का योग तो समाधि से केवल स्मृति लेकर लौटने का योग नहीं, यह तो बस तत्त्व का प्रकटीकरण चाहता है, इहैव, इसी जीवन में और जब वह यहां प्रकट हो गया तो यही मर्त्यलोक अमृत का धाम बन जाता है, यही पृथ्वी दिव्यलोक बन जाती है। यही है रूपांतरण, श्रीअरविन्द के योग का वह मर्म जिसकी क्रमिक सिद्धि परम चेतना के क्रमिक उन्मेष के साथ चलती है और सिद्धि आ जाने पर पृथ्वी देवलोक बन जायेगी। मन, प्राण और शरीर परा चेतना की स्वरूप-विभूति, उसके दिव्य अवस्थान बन जायेंगे।

रूपांतरण के इस विशाल मानचित्र में क्षणिक चमत्कारों का क्या मूल्य है? उन्हें हम इसमें कहा सजायेंगे? रात में रोशनी जलती है; हम उसको चमत्कार कहते हैं। परन्तु सूर्योदय को हम क्या कहेंगे जो रात को ही समेट लेता है। सत्ता की तीन अवस्थाओं में -व्यक्ति विश्व और विश्वातीत परात्पर में - सत्य का संस्पर्श कहीं भी प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि वह सर्वत्र है, सर्वव्यापी है और यह संस्पर्श भी व्यक्तित्व के किसी केंद्र से प्राप्त किया जा सकता है। उसका प्रकाश, उसकी शांति तथा उसके आनंद को साधक अपनी सत्ता के किसी केंद्र को उद्बुद्ध कर प्राप्त कर सकता है। कहीं भी वह सुवर्ण-तोरण बनाकर व्यक्तिगत चेतना के उस पार चला जा सकता है। इस प्रकार हठयोगी यदि देह के क्षेत्र में यह सुनहला फाटक बनाने की चेष्टा करता है तो राजयोगी या ज्ञानी मन के क्षेत्र में इस मुक्तिद्वार की रचना करता है। भक्त का यह स्वर्णद्वार उसका हृदय है, जहां से पार जाकर वह अपने प्रियतम को वृंदावन, बैकुंठ अथवा साकेत में देखता है। परन्तु किसी भी हालत में परिधि का लांघना जरूरी है, प्रपंच के इस घेरे को तोड़ना आवश्यक है; क्योंकि वह "प्रपंचोपशमं शान्तं शिव" जो है। निवार्ण, ब्रह्म अथवा भगवान् की प्राप्ति हो जाती है, हां, उन्हीं के पास जाकर। परन्तु घेरे के भीतर का यह लोक? संसार अथवा जगत और देह प्राणमय यह जीवन क्या सचमुच ही एक अंध पहेली है, जिसकी रचना इसीलिये हुई कि इससे जितना जल्दी हो सके निकल भागा जाये?

फिर प्राचीन का ही तो एक प्रमुख सूत्र है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म।' यहां यह देह जड़ जगत, सुख-दुख के अभिघातों से प्रताड़ित यह जीवन, कुहेलिकाग्रस्त मन सभी उसकी अस्फुट अथवा अर्द्धस्फुट महिमा के खेल हैं। इन सबों में वह स्वयं है और तब तो यह मानना पड़ेगा कि इस विराट रचना के भीतर जो निगूढ़ अभिप्राय है वह अब तक प्रकट नहीं हुआ है, उसकी महिमा अभी तक निरावृत्त नहीं हुई है। वह मर्म अभीतक उद्घाटित होने के लिये शेष बचा ही हुआ है जिसके लिये वह अरूप और अनाम ने नाम और रूप लिया है और उसी अंतरंग महिमा का दुर्वह चाप वहन करती विश्व प्रकृति काल-पथ पर आज तक चलती आयी है, जड़ से प्राण और प्राण से मन तक। त्रिविध सूत्रों की यह ग्रन्थि, देह-प्राण और मन का यह मूर्तिपिंड, मनोमय प्राणी, विश्व सृष्टि का अद्यावित शिखर अवश्य ही है, परन्तु आगे भी ऐसा ही रहेगा यह कौन कह सकता है? वरन् सच्ची बात तो यह है कि मनोमय प्राणी भी अपनी इस स्थिति से संतुष्ट नहीं। वह मृत्यु के शासन में है, परन्तु अमृत चाहता है; अज्ञानग्रस्त है परन्तु ज्ञान का संधान कर रहा है; अंधेरे में है लेकिन प्रकाश की खोज कर रहा है और यह एक विश्वजनीन चाप है; जड़वादी से लेकर अध्यात्मवादी तक सभी इसका अनुभव करते और अपने-अपने ढंग से निदान की तलाश कर रहे हैं। फिर मनुष्य की वह चंचलता, उसका यह संतोष जो अपने-आपमें एक पीड़ा है वही एक शुभ संकेत भी है। हम देखते हैं कि विकासक्रम में प्रत्येक नवोन्मेष के साथ ही पूर्वगामी स्तर पर प्रकृति की सर्जनशील धारा का वेग थम जाता है। परिवर्तन अथवा नूतन सृष्टि का उदग्र चाप शिथिल या मंद हो जाता है। इस प्रकार पशु सृष्टि के साथ ही नये वृक्ष और लताओं का सृजन बंद हो जाता है और मानव के उद्भव के साथ ही पशु अथवा वनस्पति जगत की अन्यान्य जातियों का पैदा होना रुक जाता है। विश्वप्रकृति की अग्रगति इस नियम से अनुशासित दीखती है। परन्तु मनुष्य अपवाद ही बना हुआ दीखता है; उसका रूप स्थिर है, फिर भी वह चंचल है और जब तक वह अपनी ऊंची संभावना को अभिव्यक्त नहीं कर लेता तब तक वह परिवर्तन का चाप अनुभव करता रहेगा।

एक शब्द में कहा जाये तो यह इस बात का संकेत है कि आज की अपूर्ण सृष्टि कल की पूर्ण सृष्टि का दुर्वह चाप वहन करती हुई कालपथ पर आगे बढ़ रही है। विश्वप्रकृति का रंगमंच आज मानवजाति के कोलाहल से भरा हुआ है परन्तु आज का मर्त्य मानव ही कल आने वाले दिव्य मानव का पूर्व रूप है। प्रकृति की इन्हीं मृण्मय प्रतिमाओं में सूचना है कल के दिव्य प्राणियों की वह अनागत देवों का यही संदेश ढो रही है 'Carrying clay-images of unborn gods' |

श्री अरविन्द का योग इसी विधान का रूपायण है। विश्वलीला के पूर्ण अभिप्राय का प्राकट्य जिस विधि से संभव है उसे ही वे 'रूपांतर' कहते हैं।

पांडिचेरी आने के बहुत पहले अपनी साधना के प्रारंभकाल से ही श्रीअरविन्द ने प्राप्त कर लिये थे वे अनुभव जो अब तक की सिद्धियों के चूड़ांत शिखर थे। अब मास पर मास बीत रहे थे, वर्ष पर वर्ष निकल रहे थे, श्रीअरविन्द की यात्रा जारी थी, उसी गति से उसी शक्ति के साथ, पर अकल्पित दिशा में अकल्पनीय सिद्धि के लिये। क्योंकि उनका था व्यक्ति की चेतना में विश्व प्रकृति का महायोग|

और उनकी इस विराट् यात्रा में एकमात्र साथ थीं श्रीमां। परन्तु लोगों को इसका क्या पता था? जननेता उन्हें आज भी राजनीति में देखना चाहते थे।

१९२५ की ५ जनवरी को लाला लाजपतराय ने श्रीअरविन्द से भेंट की। उनकी बातचीत डॉक्टर निहालचंद, कृष्णदास और पुरुषोत्तम दास टंडन के साथ भी हुई। तत्कालीन राजनीति के संबंध में ही यह बातचीत थी।

जनवरी में ही श्रीमां का शरीर रुग्ण हो गया। डॉक्टर बनर्जी मिर्जापुर से आये और उन्होंने श्रीमाँ को देखा।

इस वर्ष २५ मई को श्रीअरविन्द ने अपने एक पत्र में पांडिचेरी के वातावरण के संबंध में जो चर्चा की थी, वह महत्त्व की थी, उन्होंने लिखा था, "यहां की दशा अच्छी नहीं है। मैं अभी शरीर के स्तर पर कठिनाइयों से संघर्ष कर रहा हूं।"

चितरंजन दास की मृत्यु पर श्रीअरविन्द ने बाम्बे क्रॉनिकल के अनुरोध पर जो संदेश दिया उसमें उन्होंने उनके ऊंचे गुणों की प्रशंसा की और कहा कि वे तिलक के बाद अकेले ही ऐसे व्यक्ति थे जो भारत को स्वराज्य की ओर ले जा सकते थे।

इसी समय बारीन को श्रीअरविन्द ने कलकत्ते में भवानीपुर केंद्र बंद कर देने के लिये लिखा।

श्री अरविन्द के जन्मदिन के अवसर पर चमेली के फूलों से बरामदे को सजाया गया था। उस अवसर पर दोरास्वामी, कपाली शास्त्री आदि २७ व्यक्ति उपस्थित थे। इसी समय २६ दिसम्बर को संत हिलेयर जापान से आये। आश्रम में उनका नाम 'पवित्र' हुआ और वे तब से यहीं रहने लगे।

श्रीअरविंद (संक्षिप्त जीवनी) पृ.100

“श्री अरविन्द मेरे गुरु हैं”

आश्रम के एक साधक विश्वजीत ताल्लुकदार को साधु –सन्तों से मिलने का बहुत शौक है। अतः वे प्रतिवर्ष भारत भ्रमण करके साधु –सन्तों से भेंट करते हैं।

एक बार बंगाल जाने पर उनके एक मित्र ने उन्हें काँधी के 120 वर्ष से भी अधिक आयु के एक महान् राजपूत सन्त पिशाच बाबा के विषय में बताया। मित्र ने कहा कि ये संत 10-12 भयानक कुत्तों के साथ रहते थे और जब कोई उनके दर्शन करने समीप आना चाहता वे उसको पत्थर मारते और गालियाँ देते थे। जनता से पीछा छुड़ाने के लिए सिद्ध संत इस प्रकार का व्यवहार करते हैं।

विश्वजीत का मित्र उनके साथ काँधी आया किन्तु उसमें पिशाच बाबा के सामने जाने की हिम्मत नहीं थी। विश्वजीत अकेले ही बाबा के पास गए। बाबा उनको साष्टांग प्रणाम करके पृथ्वी पर लेट गए तो वे आश्चर्यचकित रह गए। प्रणाम के पश्चात जब बाबा खड़े हुए तब विश्वजीत ने पूछा , “बाबा! आपने मुझे प्रणाम क्यों किया?” बाबा गाली देकर बोले, “साला! मैंने तुझे प्रणाम नहीं किया, वरन् श्री अरविन्द को प्रणाम किया है। वे मेरे गुरु हैं। मुझे अरविन्द बाबू के दर्शन कलकत्ते में हुए थे। “अब वे एक ऋषि हो गए हैं ?”

विश्वजीत ने पूछा, “बाबा, मैंने तो आपको यह नहीं बताया कि मैं श्री अरविन्द आश्रम से आया हूँ। आपको कैसे ज्ञात हुआ?”

बाबा ने उत्तर दिया , “क्या मुझे बताने की कोई आवश्यकता है?” बाद में बाबा ने श्री अरविन्द के विषय में अनेक बातें बताईं। उन्होंने कहा, “अभी श्री अरविन्द का युग नहीं आया है। 21 वीं सदी से उनका युग आरम्भ होगा। तब सारी दुनिया उनका अनुसरण करेगी। पश्चिमी जगत् उनकी ओर अधिक आकर्षित होगा।”

एक ही समय में अनेक कार्य

“मैं कितना सौभाग्यशाली था कि मुझे ऐसे महान व्यक्ति के निकट रहने का सुअवसर मिला जो एक ओर इतने महान् और विद्वान थे, दूसरी ओर इतने शान्ति और सौम्य तथा जिन्होंने देश के लिये इतना बड़ा त्याग किया था।

“हम तीन कमरों के एक छोटे-से दोमंजिले मकान में रहते थे। श्री अरविन्द वहाँ पर महाभारत का अंग्रेजी में पद्यानुवाद कर रहे थे और उस समय के सबसे प्रसिद्ध समाचारपत्र वंदेमातरम के लिए लेख लिखते थे। साथ ही साथ अवकाश के क्षणों में वे मुझे कार्लाइल की पुस्तक ‘वीर और वीर पूजा’ (हीरो एंड हीरो वर्शिप) का अर्थ समझाते थे। उन्हें देखकर मैंने जीवन में पहली बार जाना कि मन को तीन-चार भिन्न-भिन्न कामों में लगना संभव है। एक बार मैं रह नहीं सका और उनसे पूछा, ‘यह कैसे संभव है ?’ श्री अरविन्द ने उत्तर दिया, ‘यह बहुत कठिन नहीं है। यदि मन को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाये तो उसे सरलता से वश में किया जा सकता है।’”

आश्रम-गतिविधियाँ

1. 2 सितम्बर चाचा जी की 37 वीं पुण्य तिथि

प्रातः 7 बजे ध्यान कक्ष में श्रीला दीदी द्वारा संगीतमय अहवाहन।

प्रातः 8:30 बजे चाचा जी की समाधि पर हवन एवं पुष्प अर्पण।

संध्या 6:30 बजे समाधि क्षेत्र में अभिप्सा का प्रकाश।

संध्या 6:45 से 7:45 बजे तक (मदर स्कूल के भूतपूर्व विदूयार्थी) श्री पार्थ चंदा और श्रीमती रंजिनी चतुवेर्दी द्वारा संगीत प्रस्तुति।

2. 7 सितम्बर प्रार्थना सभा

ध्यान-कक्ष में प्रार्थना-सभा का आयोजन हुआ। सुश्री मिथु पाल ने भजन प्रस्तुत किया।

3. 23 सितंबर तृतीय अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन

विश्व हिंदी परिषद द्वारा विज्ञान भवन में आयोजित तृतीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की ओर से तारा दीदी एवं अपर्णा दीदी उपस्थित थीं। उल्लेखनीय है कि यह कार्यक्रम श्रीअरविन्द को समर्पित रहा।

4. 30 सितम्बर भजन

श्री सिद्धान्त नेगी ने ध्यान कक्ष में भजन प्रस्तुत किया।

5. 2 अक्तूबर महात्मा गांधी एवं लाल बहादुर शास्त्री जयंती

इस अवसर पर 'स्वच्छ भारत – हरित भारत' के अंतर्गत श्रमदान का आयोजन हुआ जिसमें आश्रम वासियों के साथ मेहमान भी जुड़े।

'सुभाष चन्द्र बोस' चलचित्र का प्रदर्शन भी किया गया।

6. 5 अक्तूबर- संगीत अर्चना

श्री क्षितिज माथुर एवं उनके शिष्यों द्वारा गायन प्रस्तुत किया गया।

7. 10 अक्तूबर विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस

आश्रम प्रांगण में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े चिकित्सकों ने मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ीं महत्वपूर्ण जानकारियाँ दीं। आश्रम से डॉ. सुरिंदर कटोच (MD, BAMS, DNHE, CIY Ayurcedic Physcian एवं Yoga Expert), डॉ. रमेश बिजलानी (Retired Professor of Phsiology-AIIMS, दिल्ली) के अलावा डॉ. दीपक गुप्ता (Centre for Child & Adolescent Wellbeing के Founder /डाइरेक्टर), डॉ. दीपक रहेजा (Delhi Psychiatric Society के अध्यक्ष), सुश्री सोनिया भण्डारी (Consultant Art Therapist) ने भी मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में अति रोचक जानकारी प्रदान की।

7. 19 अक्टूबर से 25 अक्टूबर प्रशिक्षणार्थियों का नैनीताल केंद्र में शिविर

8. 28 अक्टूबर – प्रार्थना सभा एवं भजन संध्या संध्या 6.45 से 7.45
तारा दीदी द्वारा वाचन
श्रीमति पूरबी चंदा एवं श्री पर्था चंदा (माँ एवं पुत्र) द्वारा संगीतमय प्रस्तुति। हारमोनियम पर संगत देंगे श्री दिवाकर शर्मा

9. श्री अरविंद सोसाइटी, हिंदी क्षेत्रीय समिति की रांची शाखा में आयोजित वार्षिक सम्मेलन के द्वितीय सत्र में श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की साधिका डॉ अपर्णा रॉय द्वारा 'योग में मातृशक्ति की महिमा' पर वक्तव्य

10. साप्ताहिक गतिविधियां

मंगलवार – डॉ. अपर्णा रॉय द्वारा 'आंतरिक रूप से जीना' (Living Within का हिन्दी रूपान्तरण)पर संध्या 5.30 से 6.30 स्वाध्याय कक्षा

वृहस्पतिवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'सावित्री' पर संध्या 5.30 से 6.30 पुनः रविवार प्रातः 11.45 से 12.45

शुक्रवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'गीता' पर संध्या 5.30 से 6.30 पुनः रविवार संध्या 5.30 से 6.30

ध्यान कक्ष में संध्या 7 से 7.30 –

शुक्रवार - डॉ. रमेश बिजलानी की वार्ता

शनिवार - डॉ. अपर्णा रॉय की वार्ता

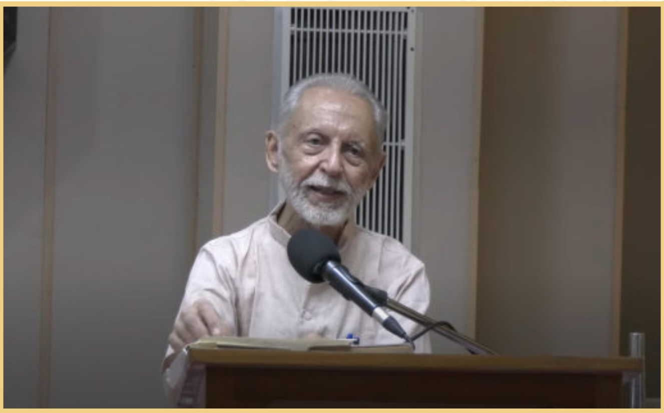

11. रविवारीय वार्ताएं – ध्यान कक्ष में – प्रातः 10 से 11.30

3 सितंबर - सुश्री प्रीति महुरकर –
My Journey as a Seeker on the Path of Integaral Yoga
भजन - श्री राजकुमार

10 सितंबर - सुश्री मोनिका गुलाटी - Sant Kabir, on the Mind
डॉ मिथु पाल – भजन

17 सितम्बर - हमारे प्रश्न श्री माँ के उत्तर – डॉ अपर्णा रॉय
भजन – अदित्य एवं रिचा

24 सितंबर - The Status of Knowledge – डॉ मनुक गोयल
भजन – सुश्री बसुधारा मुंशी

1 अक्तूबर – डॉ अपर्णा रॉय द्वारा – सुंदर और संतुलित जीवन
सुश्री मोनिदिपा घोष द्वारा भजन

8 अक्तूबर – सुश्री मोनिका गुलाटी – कबीर सूरमा के संग
भजन – आदित्य एवं अरुणिमा

15 अक्तूबर - डॉ रमेश बिजलानी – Integral Yoga : Integral in Ways more than One
भजन – डॉ मिथु पाल

22 अक्तूबर – डॉ मिथु पाल - Inner Conviction –
भजन - डॉ मिथु पाल

29 अक्तूबर - The Purified Understanding - डॉ मनुक गोयल
भजन – सुश्री बसुधारा मुंशी

सुश्री मोनिका गुलाटी

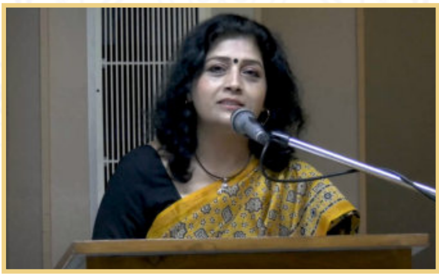
डॉ मिथु पाल

डॉ मनुक गोयल